अध्याय–६

श्रमनीति

औद्योगिक सम्बन्ध

—भारतीय मजदूर संघ

प्रस्तावना

'Labour Policy' पुस्तक जो मा० श्री ठेंगड़ी जी, गोखले जी व मेहता जी द्वारा लिखी गई है। यह प्रस्तुत पुस्तिका उसी पुस्तक के अध्याय क्र० ६ की हिन्दी रूपान्तर है।

इसी प्रकार शेष १९ अध्यायों के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये गये हैं।

इस अध्याय के अनुवादक हैं– लखनऊ विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग के प्राध्यापक डा० महेन्द्रप्रताप सिंह। उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

—प्रकाशक

अध्याय ६

औद्योगिक सम्बन्ध

प्रस्तावना

सरकारी श्रम नीति

औद्योगिक सम्बन्धों की समस्याओं की पेचीदगी उन मनोभावों में निहित है जो सेवायोजक और कर्मचारीगण अपने मध्य सम्प्रेषण में अपनाते हैं। इस विषय में सरकार कुछ विशेष न करके अपने को एक आदर्श सेवायोजक के रूप में प्रस्तुत कर सकती है। सम्प्रेषण या संवादवहन की समस्याओं को समझने के लिए हमें इस प्रवाहिका का व्यवहार तथा सेवायोजकों और कर्मचारियों के मध्य सम्प्रेषण के तरीकों को समझना पड़ेगा। इस संबन्ध में सरकार की स्थिति भी निश्चित करनी पड़ेगी, विशेषतया उस बिन्दु पर जबकि दोनों पक्षों के बीच पारस्परिक संधिवार्ता कोई निश्चित प्रतिफल प्राप्त करने में समर्थ नहीं होती है। ऐसी स्थिति में सरकार या तो स्वयं हस्तक्षेप करे अथवा उसे झगड़े के किसी एक पक्ष की प्रार्थना पर ऐसा करना चाहिए ? इस प्रश्न की प्रकृति जननीति के कुछ निश्चित लक्ष्यों की स्वयंसिद्ध कल्पना करती है। प्रथमतः स्पष्ट रूपेण सरकार का यह कर्त्तव्य है कि झगड़े के किसी पक्ष द्वारा जनता की लूट न की जाए। कर्मचारियों द्वारा की गई प्रत्येक हड़ताल या सेवायोजक द्वारा की गई प्रत्येक तालाबन्दी जनता के लिए कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं। प्रत्येक बार जब किसी जनोपयोगी संस्थान अथवा उद्योग में व्यवस्था तितर-बितर हो रही हो तो जनता की इस कठिनाई के प्रति अंधश्रद्धा भाव रखना ठीक नहीं होगा। परन्तु साथ ही जनता का यह अधिकार है कि

वह आशा करे कि ऐसी परिस्थिति में सरकार अवश्य ही उनकी ओर से हस्तक्षेप करेगी जब किसी विवाद में उनके सामूहिक जीवन को धमकी दी जा रही हो या जिसके कारण सर्वसाधारण को बहुत नुकसान उठाना पड़ रहा हो या जनजीवन में अभद्रता उत्पन्न हो रही हो। परन्तु इसके अतिरिक्त सरकार को किसी औद्योगिक विवाद में उस समय तक दूर रहने का अधिकार है जब तक विवाद के किसी एक पक्ष के द्वारा सहायता के लिए प्रार्थना न की गई हो। इस प्रार्थना पर भी उसे बिना पर्याप्त कारण के दौड़ना नहीं चाहिए और उसे प्रार्थी की प्रमाणिकता की परीक्षा और प्रत्येक मामले की सार्थकता की जाँच करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में साधारणतया यह कहा जा सकता है कि उसको विवाद के कमजोर पक्ष के लिए एक दयालु दृष्टिकोण रखना चाहिए यद्यपि इसका अर्थ यह न लिया जाना चाहिए कि वह कमजोरी को बढ़ावा दे रही है या अनुग्रहीत कर रही है। दूसरी ओर जब विवाद वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन लाने के लिए हो तो उसे मान्यता प्राप्त यूनियन अथवा जो यूनियन सम्बन्धित कर्मचारियों के लिए सौदा करने के अधिकारी हो– की प्रार्थना का सम्मान करना चाहिए और महत्वपूर्ण मामलों में केवल कागजी यूनियन से बात नहीं करनी चाहिए। परन्तु श्रमिकों के कानूनी या संविदात्मक अधिकारों की रक्षा जैसे मामलों में उसे अपनी सेवायें और बल किसी भी साधारणतम श्रमिक को सबसे बड़े सेवायोजक के विरुद्ध भी प्रदान करना चाहिए।

संदर्भ का महान आधार उपरोक्त विचारों को बनाते हुए सरकारी हस्तक्षेप के विभिन्न रूपों और नीति के विभिन्न प्रसारों की एक आदर्श योजना परिकल्पित की जा सकती है। औद्योगिक संबन्ध पर सरकारी नीति की प्रभावशालीनता या प्रभावहीनता को ऐसे ही विचारों के आधार पर जाँचा जा सकता है, जिन्हें वर्तमान परिस्थितियों में न्यायपूर्ण और ठीक माना जा सकता है। मोटे तौर पर श्रमिक पक्ष से सरकारी हस्तक्षेप की मांग करने वाली परिस्थितियाँ और हस्तक्षेप के उचित स्वरूपों का वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

(।) व्यक्तिगत प्रकृति की शिकायतों के लिए जैसे विभुक्ति, सेवामुक्ति, स्थानान्तरण, देय भुगतान न करना इत्यादि। (अ) जब सरकार प्रगटतः सन्तुष्ट हो कि विभुक्ति, सेवामुक्ति, स्थानान्तरण इत्यादि गैर कानूनी हैं या वह समझौते के विरुद्ध हैं या व्यवहार के विरुद्ध हैं अथवा अन्यायपूर्ण और अनुचित हैं तो

योग्य कार्यपालक अधिकारी को अधिकार होना चाहिये कि वह सेवायोजक को उसके द्वारा न्यायपालिका से अन्तिम निर्णय प्राप्त करने के अधिकार को सुरक्षित रखते हुए अपना फैसला उलटने या संशोधित करने पर मजबूर कर सके। (ब) अन्य मामलों में कर्मचारी या उसकी यूनियन में उचित न्याय की प्राप्ति के लिए अपना मामला न्यायालय में ले जाने की शक्ति होनी चाहिए। अतः सरकारी हस्तक्षेप का रूप यह होगा कि वह श्रमिक द्वारा की गई शिकायत की पहली दृष्टि में प्रगट होने वाली खोजों पर कार्य करें। कार्यपालक अधिकारी द्वारा उपयोग किए गए अधिकारों के संबन्ध में न्यायपालिका द्वारा दिए गए निर्णय इस संबन्ध में आवश्यक सुधार करेगें।

(२) अवार्ड या समझौतों के पालन न होने के कारण होने वाले अन्याय के लिए यह काफी होना चाहिए कि यदि कोई यूनियन उसपर विवाद उठा दे और तब सरकार द्वारा पालन किया जाने वाला प्रक्रम वैसा ही होना चाहिए जैसा ऊपर दिया गया है। अतः व्यक्तिगत विवाद और सामूहिक विवाद में भेद किया जाना चाहिए और दूसरे के लिए एक पंजीकृत यूनियन की मध्यस्थता पर सरकार द्वारा हस्तक्षेप करने से पहिले जोर दिया जाना चाहिए। इससे श्रमिकों के जिम्मेदार यूनियनों के विकास में और प्रवृत्तियों के अनुशासन में सहायता होगी।

(३) जब यूनियनों द्वारा वर्तमान परिस्थितियों को परिवर्तित करने की मांग उठाई जाए तो सरकारी हस्तक्षेप के रूप के लिए एक निकट अध्ययन और विभिन्न तत्वों में समतोलन की आवश्यकता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जो कर्मचारी और सेवायोजकों की स्वस्थ संस्थाओं के विकास के लिए आरक्षित है। यहाँ पर बल सामूहिक सौदेबाजी पर होना चाहिए। दोनों ही पक्षों को साथ बैठना आवश्यक होना चाहिए, जिससे वे बैठकर अपनी औद्योगिक संबन्ध की समस्याओं पर विचार विमर्ष कर सकें। इन झगड़ों में सरकार को उसी समय हस्तक्षेप करना चाहिए जब एक दृढ़ और विश्वस्त ट्रेड यूनियन द्वारा मांग की जाय। परन्तु एक दृढ़ और विश्वस्त यूनियन के तत्वों को तय करनेके लिए कोई वेलोच नियम नहीं बनाने चाहिए, क्योंकि प्रायः सदस्य संख्या इत्यादि पर आधारित अंकगणितीय तत्वों से उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती है। वे खुले बहीखाते में छलसाधन के लिए लिखे गये हैं और आधारभूत श्रेणियों

और विभागों के अव्यवस्थित होने के विरुद्ध कोई गारंटी नहीं प्रदान करते हैं। प्रत्येक मामले में परिस्थितियाँ प्रायः भिन्न होती हैं। और फिर भी वे भ्रमरहित रूप में यह प्रगट कर देती हैं कि कौन सी यूनियन या यूनियनें प्रभावी हैं और उन पर प्रतिफल प्राप्त कराने का विश्वास किया जा सकता है। एक तर्क शुद्ध रीति से सुप्रशिक्षित और सुदृढ़ श्रमप्रज्ञान इस कार्य को करने में सक्षम होना चाहिए। ऐसे मामले में सरकारी हस्तक्षेप का रूप ऐसा होना चाहिए कि वह उभयपक्षों को समझौता करने के लिए मार्गदर्शन करे और न होने पर विवाद के लिए एक ऐच्छिक पंच फैसले का मार्ग प्रशस्त करे। अनिवार्य अभिनिर्णय को अन्तिम अस्त्र के रूप में ग्रहण करना चाहिए। वेजबोर्ड और वेतन आयोगों की नियुक्ति तब की जानी चाहिए जब विशाल जनसमुदाय या संस्थाओं से गवाहियां एकत्रित करनी हों और प्राविधिक अध्ययन करना आवश्यक हो।

कोई सरकार यदि नीति के उपरोक्त प्रतिपादनों पर दृढ़ रहे और यह प्रदर्शित करे कि उसे इनके निहित अर्थों का पूर्ण ज्ञान है तो ऐसा माना जा सकता है कि उसने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। सरकार की श्रम नीति की प्रभावोत्पादकता की जांच के तत्व हड़ताल या तालाबन्दी के द्वारा होने वाली मानव-दिवसों की हानि इत्यादि नहीं होना चाहिए, परन्तु स्वस्थ संस्थात्मक संबन्धों का विकास होना चाहिए, जो वह धैर्यपूर्वक बढ़ा सकती है और व्यक्तिगत कर्मचारियों को सेवा संबन्धी और उन लाभों की सुरक्षा, जिन्हें उसने अधिकार रूप में प्राप्त किया है– प्रदान कर सकती है। उसकी प्रभावोत्पादकता इस बात से प्रगट होगी कि उसने अपनी कार्यपालक सत्ता के लिए कितनी श्रद्धा उत्पन्न कर ली है। सामूहिक सौदेबाजी के क्षेत्र में आने वाले मामलों में उसकी सफलता का नाप उन समझौतों की संख्या होगी जिन्हें श्रमयंत्र की सहायता के द्वारा प्राप्त कराया गया है। इसके बाद हम ऐच्छिक पंचनिर्णय को सौंपे गए मामलों को गिन सकते हैं। परन्तु अनिवार्य अभिनिर्णय को सौंपे गए मामलों को उसकी असफलताओं में गिना जाना चाहिए। वैयक्तिक अन्यायों या पालन सम्बन्धी यूनियन की शिकायतों के मामलों में नीति के कार्य क्षमता का अनुमान लगाने के लिए न्यायालयों की प्रताड़ना को ही मार्गप्रदर्शक रेखायें मानना चाहिए। इसके अलावा औद्योगिक संबन्ध का क्षेत्र सरकार का कार्य नहीं है और किसी अल्पकाल में औद्योगिक संबन्धों के बनने या बिगड़ने के लिए उसे दोषी नहीं ठहराना चाहिए। दीर्घकाल में औद्योगिक संबन्धों की प्रवृत्ति के लिए

हमारे विचार से सरकार द्वारा एक आदर्श सेवायोजक के रूप में रखा गया उदाहरण उसकी इस संबन्ध में देन का सबसे अनुलोम तत्व होगा ।

उपरोक्त दृष्टिकोण के आधार पर औद्योगिक संबन्धों पर सरकारी नीति के हिसाब को जाँचने से ज्ञात होगा कि स्वतंत्रता के बाद उसकी गतिशील असफलतायें हुई हैं। प्रथमतः सार्वजनिक क्षेत्र आशाओं के अनुरुप नहीं सिद्ध हुए हैं। हिसाब इतना गलत है कि उसने औद्योगिक संबन्धों का कोई आदर्श स्थिर करना असंभव कर दिया, जिसे निजी क्षेत्र अपना सके । भारतीय श्रम कान्फ्रेंस के २३ वें अधिवेशन में जब सरकारी प्रवक्ता ने श्रम-व्यवस्थापक संबन्धों के विषय में नए दृष्टिकोण की शिफारिश की तो श्री नवल टाटा ने सेवायोजकों की ओर से शीघ्रता से कहा, "यदि यह अच्छा है तो आप स्वयं प्रयोग करें, हम आपसे सीखेगें"। यह एक अकेला ही उदाहरण नहीं है जब सार्वजनिक क्षेत्र को लाभरहित प्रकृति रखते हुए भी उद्धृत किया जा सकता है। द्वितीयतः श्रम-नीति का उद्देश्य अर्थात उद्योग में शान्ति बनाये रखना जहां तक स्पष्ट लगता है विलोम है इसका प्रतिफल यह हुआ है कि प्रत्येक परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार कुछ सोद्देश्य ढंग अपनाए गए और श्रमनीति के दीर्घकालीन निर्देशन का अभाव रहा है। औद्योगिक संबन्धों के अधिक अनुलोम पहलुओं जैसे प्रत्येक फर्म या उद्योग में संस्थात्मक संबन्धों की स्थिरता, जीवन निर्वाहस्तर को उठाने के लिए सहायक तत्वों के विषय में पारस्परिक भाव साम्य इत्यादि की इस प्रक्रिया में हानि हुई है। तृतीयतः प्रशासकीय बल के अभाव में संराधन या पालन यंत्र कमजोर रहा है । इसने सरकारी हस्तक्षेप में श्रमिकों का विश्वास डिगा दिया है। चतुर्थतः वर्तमान काल में व्यवस्थापक मद से उत्पीड़ित श्रमिक के पास कोई औषधि नही है। जो भी न्यायसंगत रास्ता वह अपनाता है वह खर्चीला और अनिश्चित है। यह वस्तुस्थिति विशाल काया भग्नाशा और विश्वास की पूर्ण हानि का कारण रहा है । अन्त में, अनुशासन कोड जो कि अंक-गणितीय मूल्यों पर आधारित है औद्योगिक रचना के अनेक महत्वपूर्ण बिन्दुओं और परिस्थितियों की अवहेलना करता है। प्रतिफल में कोड कोई उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता है । अनेक बार कोड की वेलोच व्यवस्थाओं पर मजबूती से बैठकर व्यवस्थापक और मान्यता प्राप्त यूनियनें उत्पीड़ित सदस्यों और मान्यतारहित यूनियनों की बात भी नहीं सुनते हैं। यह कडुवाहट और प्रतिशोध का वायुमंडल बहुत ही सुलझे हुए और भली बात सोचने वालों के मस्तिष्कों में उत्पन्न कर देता है। कोड का वास्तविक संचालन अनेक अनुचित

श्रम व्यवहारों के लिए पीडन और शरण का कारण रहा है। औद्योगिक संबन्धों पर सरकारी नीति इस प्रकार कोई उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकती है क्योंकि उसने न तो अपनी सीमाओं को समझा है और न हीं वह एक निःसीम ढंग से किसी उद्देश्य के प्रति श्रद्धालु है। उसका शान्ति के लिए प्रयत्न वहुत हद तक भ्रामक है क्योंकि वह वर्तमान वस्तुस्थिति के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर विवाद की उपयोगिता की अवहेलना करती है। उसका प्रभाव प्रगति के लिए जोश को ठंडा करने का हुआ है।

त्रुटिपूर्ण सम्प्रेषण

औद्योगिक झगड़े का मूलभूत कारण

श्रमिकों और व्यवस्थापकों के वीच संवादवहन की प्रवाहिका का व्यवहार ही औद्योगिक संबन्धों को उन्नत करने के लिए केन्द्रीय महत्व का है। आधुनिक औद्योगीकरण का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह है कि उसने एक औद्योगिक संस्थान में मजदूरों के व्यक्तित्व को नष्ट कर दिया है। ऐसी परिस्थिति में किसी श्रमिक की सामान्य और प्राकृतिक अनुभूति यह होती है कि उच्च अधिकारी हर समय उसके विरुद्ध कुछ पकाते रहते हैं और वर्तमान परिस्थिति तो अब बदलने वाली नहीं है। उसे आत्मारहित यंत्र समझा जाता है और कम्पनी में कोई भी उसकी सुनने वाला नहीं है। तदुपरान्त अंगूर की बेल फैल जाती है और अनेक अवरोध खड़े कर दिए जाते हैं और एक दूसरे पर प्रहार ही सम्प्रेषण का सामान्य ढंग बन जाता है। इसका परिहार यही है कि प्रत्येक फर्म में सम्प्रेषण या संवादवहन की एक अथक और आशावादी प्रवाहिका बनाई जाय जो विशेषतः शीर्ष से तलतक और तल से शीर्ष तक स्वतंत्र रूप से कार्य करें। अधिकार और प्रोत्साहन साथ साथ चलने चाहिए और सम्प्रेषण के यंत्र को एक धुरी समझना चाहिए, जिसके चारों ओर औद्योगिक संबन्धों का सरगम गूँजना चाहिए। इस प्रक्रिया में न केवल श्रमिकों के नेताओं का आदरपूर्वक सुना जाएगा वरन् एक दूर स्थित कर्मचारी की दबी हुई आवाज भी पूर्ण हिफाजत से सुनी जाएगी।

इस सम्प्रेषण का प्रकार और सम्प्रेषण में प्रत्युत्तर का ढंग प्रायः व्यक्तियों के स्तर पर निर्भर होगा, जो एक दूसरे पर विश्वास करते हैं और जिनके बीच एक सतत सहयोगी प्रयत्न उत्पन्न किया जाए और चलाया जाए। वैज्ञानिक

व्यवस्था का तत्सबन्धी सम्बोध एक कर्मचारी को ऐसी वस्तु नहीं समझता है, जिसकी व्यवस्था कुछ व्यवस्थात्मक सिद्धान्तों से ही की जाएगी परन्तु वह जोकि सहयोग के सिद्धान्तों का सुझाव अपने चेतना स्तर के अनुसार देगा। एक अच्छी संवादवहन व्यवस्था इस आवश्यकता को स्वीकार करती है कि कर्मचारियों के मनोवैज्ञानिक स्तर और व्यवस्थापक के व्यवस्थापना व्यवहार के वीच प्रत्येक समीकरण के भारक तत्व के अनुसार एक उचित सम्प्रेषण की प्रवाहिका स्थापित हो। हाल ही में श्री एस० एम० पाटिल, मैनेजिंग डायरेक्टर हिन्दुस्तान मशीन टलन ने 'इक्नामिक टाइम्स के व्यवस्था में नया दृष्टिकोण' नामक लेख में कर्मचारी के विकास की पाँच स्थितियाँ बतलाई हैं जिनके लिए उत्पादकता, कार्य और सम्बन्धों के मानको को सुरक्षित रखने के लिए पाँच क्रमवार प्रवेश बतलाये हैं—

(१) मनुष्य जीवन की समस्याओं से कुछ अधिक के संबन्ध में जागरुक है। व्यवस्था के केवल उसी स्वरूप का वह प्रत्युत्तर देता है जोकि उसी प्रकार की चिन्ता उसके सम्बन्ध में करता है जैसी एक छोटे बच्चे के लिए की जाती है।

(२) दूसरा स्तर जागृति का है। उसके जागरुक मस्तिष्क में अनेक प्रेरणायें प्रवेश करती हैं। उचित व्यवस्था का रूप अपरिवर्त्तनीय निर्धारित नियमों और उनके अपरिवर्त्तनीय पालन का है।

(३) कर्मचारी 'स्वयं' की शक्ति में विश्वास करता है। उसका विश्वास है कि वह स्थापित व्यवस्था को अपनी इच्छा शक्ति द्वारा बदल सकता है। इस स्थिति में एक दीर्घकालीन संगठनात्मक शक्ति के युद्ध का सूत्रपात होता है। उत्पादन को तभी स्थिर रखा जा सकता है जब 'पाने के लिए देने' का सिद्धान्त माना जाए और वैयक्तिक अभिप्रेरणा व्यवस्था जैसी संतोषजनक रीतियों का निर्माण किया जाए।

(४) चतुर्थ स्तर पर सामाजिक-केन्द्र वृत्ति है। कर्मचारी मूलभूत व्यक्तिगत और भौतिक मामलों को छोड़कर सामाजिक मामलों से सम्बद्ध हो जाता है। ऐसे स्तर पर व्यवस्था प्रतिस्थापनीय एवं भागीदारी की होनी

चाहिए। कदाचित इस स्तर पर प्रायः प्रस्तावित 'व्यवस्था में श्रमिक भागीदारों' की रीति सफल हो सकती है।

(५) सर्वोच्च स्तर पर कर्मचारी अपनी जीने की क्षमता के बारे में पूर्ण विश्वास रखता है। वह लक्ष्य-प्रभावित होता है साधन प्रभावित नहीं। इस स्तर पर कर्मचारी विश्वासऔर आदर चाहता है। एक 'स्वीकृति व्यवस्था' जो उसे वही समझती है जो वह है और यह तथ्य स्वीकार करती है कि अपने कार्य के क्षेत्र में वह सक्षम और जिम्मेदार है और उसे जो वह आवश्यक समझता है करने में समर्थन देती है। व्यवस्था उसके साथ संगठन को फिट करती है न कि उसे संगठन में। लेखक के विचार से भारत में अनेक उद्योग उपरोक्त वर्गीकरण के तीसरे स्तर पर हैं यद्यिपि कुछ उन्नत प्राविधिक उद्योगों में तीसरा स्तर भी पार हो गया है। लेखक ऐसी भी गूढ़ार्थक परिस्थिति की संभाविता बतलाता है जहाँ एक श्रमिक नेता जो तृतीय स्तर पर हो द्वितीय स्तर में भी अपने अनुयायी रखता हो। इस विचार में हम यह जोड़ सकते हैं कि बहुत से ऐसे उदाहरण है जिनमें चतुर्थ स्तर के नेताओं के अनुयायी द्वितीय स्तर पर हों और चित्र में से तृतीय स्तर की जीवन्त कड़ी गायब हो। वह कैसा भी हो, लेखक ने एक महत्वपूर्ण और सत्य निष्कर्ष निकाला है अर्थात "उत्पादकता नियंत्रक और नियंत्रित दोनों ही की मनस्थिति का परिणाम है और स्तरों के भीतर के स्तरों पर आधारित व्यवस्था मनोविज्ञान विचलनकारी होगा परन्तु एक विशिष्ट स्तर के लिए उसे उचित बना रहना चाहिए।" यह व्यवस्थापकों और श्रम के बीच सम्प्रेषण व्यवस्था के गुण और प्रकार के प्रति ऐसा विचार प्रस्ताव है, जिसे प्रायः दैनिक कार्यक्रम और फैक्टरी की राजनीति में भूल जाया जाता है और इसीलिए हमें औद्योगिक सम्बन्धों में चारों ओर पतन दिखलाई पड़ता है। यह सम्बन्ध इसीलिए किसी उत्पादक मूल्य से वंचित रह जाता है।

सरकार का इस सम्बन्ध में पिछला कार्यवृत्त अर्थव्यवस्था के लिए बहुत ही हानिकारक है। सरकार के पास एक बहुत बड़ा औद्योगिक साम्राज्य है है जहां वह बहुत अच्छे कार्य कर सकती है। सन १९६० के केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की हड़ताल के बाद संसद में और बाहर अनेक आश्वासन दिये

गए थे कि व्हिटले काउन्सिल की स्थापना की जाएगी। तदुपरान्त सरकार द्वारा ही इस व्यवहार को कार्यरूप में बदलने के पहले विरोधों की एक श्रृंखला प्रस्तुत की गई थी। प्रथम, सरकारी कर्मचारियों से कहा गया कि वे अपने हड़ताल के अधिकार को स्वेच्छा से छोड़ दें। दूसरे यह कहा गया कि वर्तमान कर्मचारी परिषद की प्रकृति अनुचित है। तृतीय सेक्रेटेरियट के मिनिस्ट्रीयल कर्मचारियों और डाकतार, तथा रेलवे विभाग के औद्योगिक कर्मचारियों के भेद का प्रश्न उपस्थित हुआ जो आज भी समान और पुराने नियमों द्वारा अधिशासित हैं। अंत में जब संयुक्त सलाहकार समिति आई तो अधिकारियों ने मीटिंगों की कार्यवाही और वृत्त लेखों को रखने या छोड़ने में आनाकानी की। ऐसी विशेषाधिकारग्रस्तवृत्ति व्यक्तिओं को उनके सही स्थान पर रखती है' प्रतिफल के रूप में विशाल काया भग्नाशा उत्पन्न होती है और संचयी शिकायतों का भार बढ़ जाता है। यदि उनकी भग्नाशाओं को प्रत्यक्ष मार्ग नहीं मिलने दिया जाता है तो वे अप्रत्यक्ष मार्ग ढूंढ़ लेते हैं और खराब वस्तुओं के उत्पादन, नागरिकों के प्रति दुर्व्यवहार, भ्रष्टाचार उत्साह की कमी, 'हिंसा छोड़ देने की' मनोवृत्ति, अनुत्तरदायित्व और बदनामी टालने की वृत्ति इत्यादि अपना लेते हैं। यदि अन्य अवसरों पर वे ऐसी प्रतिक्रिया दिखलाते हैं कि महा निर्वाचन में राजनीतिक विरोध करें, चक्कर में डाल देने वाली सूचनायें दे दें या सरकारी गुप्त सूचनायें भी दे दें, तो ऐसी दशा में सरकार को ही दोष देना चाहिए कि उसने अपने कर्मचारियों को ऐसी स्थिति में ला पटका है। औद्योगिक सम्बन्धों की विकृति के कारण ये ही कमियां हैं और इन्हीं के कारण सार्वजनिक सेवाओं में पतन आया है। इसने बहुत बिस्फोटक परिस्थिति बना दिया है इतना अधिक कि किसी मामले में वह भयंकर हड़ताल में बदल सकती है। औद्योगिक झगड़े के प्रारूप सम्बन्धी साँख्यकीय वृत्त कुछ अन्य प्रतिफल भी क्यों न बतलावें यह दोषी सम्प्रेषण का ही तत्व है जो प्रत्येक औद्योगिक झगड़े की जड़ में रहता है। आजादी के बाद श्रमिकों को एक स्पष्ट आशा थी कि उनके दैनिक जीवन की व्यवस्था के लिये उन्हें विश्वास में लिया जाएगा परन्तु यह किसी बुद्धिमान रीति से नहीं अपनाया जा सका है। सम्प्रेषण की इस मूलभूत असफलता और उसकी वर्तमान प्रकृति, ढंग और क्षेत्र के कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विचारों को बल मिला है। यही कारण है कि भारत में श्रमिक असंतोष किसी गड़ी प्रवृत्ति या मामले को प्रस्तुत करने वाले भूविस्फोट की प्रवृत्ति नहीं रखता है। यह चित्र

एक सहायताहीन जनता का है जो विशालकाया भग्नाशा से पीड़ित है और जो किसी निश्चित कार्य की रूपरेखा पर विश्वासपूर्वक नही जुटा सकती है तथा जो इस असंतोष या हलचल को किसी भी प्रकार के 'वाद' के लिए उत्तेजना मानते हैं वे ही स्वयं अपनी इच्छाओं के आधार पर सिद्धान्त बनाते हैं और उपरोक्त सत्य को छिपाते हैं। कुछ व्यक्तियों के समूह ने, जिनकी गोद में आजादी के बाद सत्ता गिरी है- राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक या प्रशासकीय क्षेत्रों में अभी भी वह विवेक जिसके द्वारा वे उसे अन्य लोगों विशेषतया श्रमिकों के साथ बांट सकें नहीं सीखा है यही झगड़े का कारण है।

यूनियनों का कार्य

औद्योगिक सम्बन्धों के स्वरूप को प्रभावित करने में ट्रेड यूनियनों का कार्य प्रायः उन्हीं केन्द्रीय श्रमिक संगठनों के दर्शन और व्यवहार का अनुगामी रहा है, जिनके वे अंग हैं। कम्युनिस्टों की यह घोषित नीति है कि वर्ग संघर्ष और वर्गीय झगड़ों को बढ़ाया जाए। एटुक और अन्य कम्यूनिस्ट यूनियनों के लिए तो 'औद्योगिक संधि प्रस्ताव' का वजूद ही नहीं है और वे सभी अवसरों का प्रयोग व्यवस्थापकों और श्रमिकों के सम्बन्धों को विगाड़ने के लिए करते हैं। इस उद्देश्य से वे सभी छलसाधन अपनाते हैं और उन सभी के विरुद्ध दुर्भावना-पूर्ण प्रचार करते हैं, जो कोई निर्माणात्मक या किसी हद तक अच्छे और आदरपूर्ण सम्बन्धों को बनाने का प्रयत्न करते हैं। इन लोगों को वे व्यवस्थापकों के व्यक्ति और श्रमिकों के शत्रु बतलाते हैं और यह अर्थ लगाते हैं कि कोई भी दोनों का मित्र हो ही नहीं सकता है। कम्यूनिष्टों को वर्गसंघर्ष के इस वातावरण को बनाने में काफी सफलता प्राप्त हुई है। इन्टक जोकि वर्गसंघर्ष का विरोध करती है और वर्गसहयोग के लिए कार्य करती है श्रमिकों के मानसपटल पर इसी कारण बदनाम हो गई है। पहिले कहे गए अन्य दोषों के कारण इन्टक साधारण श्रमिकों के मन से एटुक के प्रभाव को साफ नहीं कर सकी है। हिन्द मजदूर सभा या हिन्द मजदूर पंचायत स्वयं ही इन साम्य-वादी विचारों और व्यावहारिक तत्वों से प्रभावित है यद्यपि समय समय पर उन्होंने अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों को बनाने और बनाये रखने के लिए सच्चे प्रयत्न किये हैं। परन्तु वर्गविरोध के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने के बाद वे युद्ध की स्थिति लाने की दिशा में संगठन के आन्तरिक निर्मित दबावों का विरोध नहीं कर सके हैं। इन घास की जड़ जैसी प्रवृत्तियों और

दबाओं के फलस्वरूप उन्होंने कभी भी व्यवस्थापकों से सहयोग करने की इच्छा से कार्य नहीं किया है। भारतीय मजदूर संघ ने कम्यूनिष्ट प्रभाव को पराजित करने के लिए और औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार लाने के लिए एक भिन्न रण-नीति अपनाई है। उसने एक व्यवहारिक और प्रयोगात्मक वृत्ति सभी समस्याओं के निराकरण के लिए अपनाई है और भारतीय दर्शन और संस्कृति द्वारा बतलाये गए सत्यों और पश्चिमी अर्थात कम्यूनिष्ट और स्वतन्त्र विश्व के व्यव-हारों और प्रतिफलों से अपने को पूर्ण कानकार रखा है। हिन्द मजदूर सभा के प्रतिकूल उसने अपने कार्यकर्ताओं को कुछ चुने हुए उद्योगों में केन्द्रित नहीं रखा है परन्तु एक बड़े आधार और क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए सैनिक मोर्चे बनाये हैं। कार्य करने के एक अखिल भारतीय आधार पर उसने उस वातावरण को बनाना प्रारम्भ कर दिया है, जिसको वह आदर्श औद्योगिक सम्बन्धों के विकास के लिए आवश्यक समझता है। अभी उसका योगदान श्रमिक के जीवन से सम्बन्धित प्रश्नों पर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का है और उस दृष्टिकोण ने एक उत्प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

ट्रेड यूनियन आन्दोलन में यह प्रचलन स्पस्टतः विरोधी यूनियनों का प्रश्न उठाता है। यह प्रायः कहा जाता है कि आधे से ज्यादा औद्योगिक सम्बन्धों के प्रश्न अन्तर-यूनियन-शत्रुता के कारण उत्पन्न होते हैं। इस शत्रुता के संकुचित अर्थ में यह सत्य हो सकता है कि यह किसी उद्योग के कर्मचारी विभाग की समस्याओं के निकटवर्ती या कुशल कारण बने। परन्तु एक विशाल और दीर्घकालीन संदर्भ में यह देखा जा सकता है कि मूल कारण इस देश में कम्यूनिष्ट विचारधारा के विषाक्त तत्वों का प्रवेश है। मजदूर इन अराष्ट्रीय तत्वों से अकेले ही लड़ रहे हैं और इस प्रयत्न में उन्हें व्यवस्थापकों अथवा सरकार का कोई सहयोग नहीं मिल सका है। व्यवस्थापकों ने प्रत्येक परिस्थिति में प्रायः अपनी तत्कालिक लाभ ही देखा है और कम्यूनिष्ट रणनीति के कारण पथभ्रष्ट हो गए है। बिना किसी आदर्श के उनकी प्रवृत्ति केवल कम्यूनिष्ट आदर्शों के नेतृत्व के स्वार्थी उद्देश्यों को पढ़ने की रही है और इस प्रक्रिया में वह स्वयं ही कम्यूनिष्टों की दीर्घकालीन नीतियों की चालाकी में फंस गए हैं। जब कम्यूनिष्ट-विरोधी या राष्ट्रीय यूनियनों और बड़े कम्यूनिष्ट यूनियनों में झगड़ा हुआ है तो व्यवस्थापकों ने कदाचित ही कोई गम्भीर कम्यूनिष्ट विरोधी नीति अपनायी है। उन्होंने कम्यूनिष्टों से समझौता करने का प्रयत्न किया हैं

इस आधार पर कि वे बड़ी यूनियन हैं अथवा वे संकट उत्पन्न करने वाले लोग हैं। इसको कम्यूनिष्ट विजय मानकर समारोह करते हैं तथा इसका प्रयोग वे श्रमिकों के वर्गसंघर्षमयी विश्वास को दृढ़ करने में करते हैं। इसका परिणाम उन्नतोत्तर औद्योगिक सम्बन्धों की विकृति उत्पन्न करने का होता है। सन् १९६२ में चीन के आक्रमण तक सरकार ने भी यही गलती की थी और उसके बाद यद्यपि सरकारी प्रवृत्तियों में महत्व कुछ बदला है परन्तु अनेक अवसरों पर पुराने झुकावों की पुनरावृत्ति ही दृष्टिगोचर होती है। अतः सरकार और व्यवस्थापक दोनों ही कदाचित अनजान में उन यूनियनों को महत्व दे रहे हैं, जो औद्योगिक सम्बन्धों को विकृत करने के लिए कार्यरत हैं और परिणाम यह हुआ है कि इस क्षेत्र में कोई भी संबन्धों को सुधारने के लिए नहीं बचा है। इस प्रकार व्यवस्थापकों और श्रमिकों के मध्य एक स्वरीय और सहयोगी सम्बन्धों के निर्माण का विशाल और स्वयं में पूर्ण ऐसा प्रश्न एक द्वितीय श्रेणी के उपचार का विषय बना दिया गया है और उन अधिकारियों को प्रशासकीय पक्ष के नाम पर सौप दिया गया है जिन्हें नीति निर्धारण करने अथवा महत्वपूर्ण निर्णय लेने की कोई आज्ञा नहीं प्रदान की गई है।

निश्चय ही उपरोक्त परिस्थिति में सरकार और सेवायोजक वर्तमान स्थिति को सुधारने के लिए अत्यल्प ही कर सकते हैं। इसलिये मजबूरी में यह क्षेत्र श्रमिक यूनियनों के लिए ही छोड़ना पड़ेगा। प्रत्यक्षतः यह काफी होगा यदि व्यवस्थापक अपनी सम्प्रेषण रीतियों को पूर्णत्व प्रदान करें और सरकार अपने विवेक पूर्ण भाग का निर्वाह करे। इस क्षेत्र में कुञ्जी के शब्द धैर्य और अध्यवसाय हैं। सभी अच्छे उद्देश्यों वाले व्यक्तियों द्वारा उत्तम संबन्धों के निर्माण और निर्वाह का लम्बा रास्ता धैर्ययुक्त ढंग से और अथक मुद्रा रखकर ही तय किया जा सकता है– एक अन्य प्रकार से कदाचित जो थोड़ा अप्रत्यक्ष है, सभी लोग एक समान प्रयत्न कर सकते हैं। वह क्षेत्र शिक्षा का है, प्रत्यक्षतः समाचारपत्रों और जनसम्पर्क के अन्य साधनों द्वारा जनशिक्षा देकर और विशेषतः श्रमिकों को प्रशिक्षण देकर। इस प्रस्ताव में हम इसका उपयुक्त स्थान पर वर्णन करेगें। इस समय केवल यही कहना काफी होगा कि यदि ट्रेड यूनियनों को चलाने के कम्यूनिष्ट और राष्ट्रीय तरीकों के सामान्य भेद को ठीक से समझ लिया जाए और यूनियन शत्रुता से उत्पन्न प्रश्नों की उसी प्रकाश में समीक्षा की जाए तो सही दिशा में प्रयत्न आरम्भ हो जाएगा।

उपरोक्त दृष्टिकोणों से औद्योगिक सम्बन्धों के विभिन्न तत्वों के कार्यों को देखने पर एक निश्चित मार्ग मिल जाएगा । औद्योगिक सम्बन्धों के निर्वाह के सबसे महत्वपूर्ण तत्व सेवायोजक और कर्मचारीगण हैं । सेवायोजक को चाहिए कि वह विभिन्न स्तरों के कर्मचारियों के प्रति विभिन्न व्यवस्थापक नीतियों की आवश्यकता को मान्यता देने वाले संदर्भ के प्रारूप से निर्देशित एक प्रभावशाली सम्प्रेषण प्रवाहिका की खोज करे । इसी प्रकार उसे कम्यूनिष्टों की रणनीति और राष्ट्रवादी यूनियनों के प्रयत्नों को समझना चाहिए । सरकार का कार्य सामान्यतः उस समय प्रारम्भ होना चाहिए जब श्रमिक उसकी माँग करे । यहाँ सरकार को भी चाहिए कि विभिन्न प्रकृतियों के विवादों के लिए वह विभिन्न प्रकार के हस्तक्षेप के रूप तय करे जैसे वैयक्तिक शिकायतें, पालनहीनता के लिए यूनियन प्रतिनिधित्व इत्यादि वस्तुस्थिति को बदलने के लिए विवाद इत्यादि में उसकी नीतियाँ अलग होनी चाहिए । सद्भाव को उत्पन्न करने और पारस्परिक परिज्ञान के लिए एक विवेकपूर्ण और सोद्देश्य नीति को अपनाने के अतिरिक्त सरकार को औद्योगिक शान्ति के प्रश्नों पर आवश्यकता से अधिक उद्वेलित नहीं होना चाहिए । एक प्रजातान्त्रिक संरचना में कुछ झगड़े और अपव्यय अवश्यम्भावी हैं और वह नसों का तनाव ढीला करने में और एक दूसरे को समझने के लिए उत्तम वायुमंडल निर्माण करने में औषधि का प्रभाव रख सकता है । श्रमिकों की शिक्षा के प्रश्न पर संभवतः सरकार और केन्द्रीय श्रम संगठनों के योगदान के लिए काफी क्षेत्र हैं और जनशिक्षा के विषयों में सेवायोजक भी एक बड़े रूप में प्रयत्नों में सम्मिलित हो सकते हैं । अंतिम विश्लेषण में जनमत की और श्रमिकों की वृत्तियों की शिक्षा और उपलब्धि योग्य औद्योगिक वायुमंडल उत्पन्न करने के तत्व सिद्ध होंगे । सरकार भी सेवा-योजकों के साथ कर्मचारी प्रशासन और वैज्ञानिक व्यवस्था के पहलुओं के प्रशिक्षण में सहकार्य कर सकती है और शिक्षा एक महान लक्ष्य समर्पित नीति के बीच जोड़ने वाली कड़ी बन सकती है ।

वास्तव में यह एक त्रिपक्षीय प्रयत्न होना चाहिए । औद्योगिक संबन्ध के वायुमंडल को सुधारने में अन्य प्रयत्न केवल द्वितीयक और अस्थायी प्रभाव रखते हैं । आसानी से भ्रष्ट होने वाले श्रमिक नेताओं से कार्यकारी व्यवस्था और सभी प्रकार के समझौते करना, मध्यस्थता सेवा को हलके दिलसे उपलब्ध करना इत्यादि रीतियों के द्वारा औद्योगिक विवादों को रोकने के प्रयत्न प्रायः मन बहलाने के ढंग हैं वे मूलभूत प्रश्नों के स्थायी हल नहीं प्रस्तुत करते हैं । कठिन

परिस्थितियों में किए गए विभिन्न अर्थों से उत्पन्न गड़बड़ी से व्याकुल न होते हुए औद्योगिक सम्बन्धों की योजना की मजबूत पकड़ के लिए तथ्यअन्वेषी खोजें अवश्य ही की जानी चाहिए। ये उस समय होनी चाहिए जबकि कोई संकट उत्पन्न हो गया हो या निकट भविष्य में उत्पन्न होने की संभावना हो। तथ्यअन्वेषी खोजों के लिए अनुलोम मार्ग के रूप में एक अन्य क्षेत्र भी है। किसी फैक्टरी में मनुष्यों के सम्बन्ध में और उनके प्रति अन्यायों आशाओं और सुझावों की जानकारी प्राप्त करने के लिए भी अनुलोम रीति हो सकती है। यह खोज किसी फैक्टरी के मानव-शक्ति पंजिका के निर्माण और सतत संकलन में भी सहायक हो सकती हैं, जिसके आधार या एक पूर्ण अभिज्ञात संगठन नीति अधिक अंशों में विश्वास से बनाई जा सकती है। एक आदर्श औद्योगिक सम्बन्ध योजना के लिए दोनों ही आवश्यक हैं।

ट्रेड यूनियनों की शक्ति और दुर्बलता भी अच्छे सम्बन्धों के निर्वाह में एक महत्वपूर्ण तत्व हैं। किसी फर्म में औद्योगिक सम्बन्ध को योग्य दिशा देने के लिए एक शक्तिशाली ट्रेड यूनियन ही सार्थक हो सकती है। जहाँ उद्योग की इकाई छोटी हो, जैसे दूकानों या छोटी संस्थानों या फैक्टरियों में, वहां यूनियन इतनी शक्तिशाली और विशाल होना चाहिए जो सारे उद्योग में अपना व्याप कर ले। तब केवल मजबूरी और सेवा परिस्थितियाँ ही व्यक्तिगत कर्मचारियों को उत्तेजित या उनके मन पर भग्नाशा नहीं उत्पन्न कर सकेंगी। ऐसे क्षेत्रों में समान दूकानों, संस्थानों और फैक्टरियों में मजदूरी ओर सेवा परिस्थितियों में समानता होनी आवश्यक है, जिससे अनुचित प्रतियोगिता को रोका जासके और ऐसा शक्तिशाली और बड़े यूनियनों के अभाव में नहीं किया जा सकता है। बड़े संस्थानों में, एक शक्तिशाली यूनियन का अस्तित्व प्रशासकीय प्रकृति की समस्याओं जैसे वरिष्ठता का निर्धारण, इकाइयों या विभागों का संयुक्तिकरण, कार्यपद के तत्व परिवर्तन की नई रीतियों के प्रवेश इत्यादि, को हल करने के लिए भी आवश्यक है।

श्रमिक/कर्मचारी/कल्याण अधिकारी का कार्य भी एक महत्व रखने लगता है। अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों के निर्वाह के लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारियों के अफसर सुप्रशिक्षित और कर्मचारियों के मामलों में दक्ष हों, उन्हें शीर्षस्थ अधिकारियों का विश्वास प्राप्त हो और औद्योगिक सम्बन्धों के निर्माण के लिए स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण कर सकें। उनके सम्बन्ध विभागीय अध्यक्षों

अथवा पंक्तिबद्ध व्यवस्था से जो भी हों उन्हें यूनियनों को स्पष्ट कर देना चाहिए और इस सम्बन्ध में उनके कार्य निर्धारित और ज्ञात होने चाहिए। प्रायः इन कर्मचारी अफसरों के एक या दूसरे आवश्यक गुण गायब पाए जाते हैं और तब यूनियन उनके सिर के ऊपर शीर्षस्थ अधिकारियों से बात करना पसंद करता है। यह कर्मचारी अफसरों के रूप में उनकी प्रतिष्ठा और कुशलता कम कर देता है यथार्थ में, जो आवश्यक है वह यह है कि संयन्त्र के स्तर से ऊपर तक ठीक से एक परिसीमित सम्प्रेषण की पंक्ति बनाई जाए जो शीर्षस्त अधिकारी और संचालक बोर्ड के सर्वोच्च नीति स्तर तक जाए और यूनियन की संरचना के तत्सम्वादी स्तरों से विषयों का तत्संवादी रूप विकसित करे। ऐसी सम्प्रेषण पंक्ति या प्रवाहिका की आवश्यकताओं के अनुकूल दोनों ही पक्षों को चाहिए कि अपनी शक्तिओं को अर्ध्यपित करें और अतिवादी अपीलों और मामलों के लिए नियम बनावें। कार्यपद-मूल्यांकन, पदोन्नति नीति या सेवानिवृत्ति लाभयोजना, जैसे विशिष्ट मामलों को यूनियन और व्यवस्थापकों की एक संयुक्त प्राविधिक रचना को सौंप देना चाहिए।

वर्तमान समय में ऐसी सुपरिभाषित और सुस्पष्ट सम्प्रेषण पंक्तिया अस्तित्व में नहीं हैं। अपवाद रूप में कुछ उदार फर्मों या संस्थानों में हैं। परन्तु वे भी एक स्थापित परम्परा का रूप नहीं ले सकी हैं। 'माडल परिवेदना क्रियाविधि' कुछ इसी प्रकार का कार्य करना चाहती है परन्तु उसका पालन अधिकतर संस्थानों में नहीं किया जा रहा है। वास्तव में मान्यतारहित यूनियन को प्रायः परिवेदना के प्रस्तुतीकरण में कोई स्थान नहीं दिया जाता है। यह हमारा विचार-प्रस्ताव है कि नई माँगों से अलग वैयक्तिक या सामूहिक परिवेदना संबन्धी मामलों को हाथ में लेने या प्रतिनिधित्व करने और वर्तमान नियमों, स्टैंडिंग आर्डर, या अवार्ड समझौतों की व्यवस्था इत्यादि के निर्वाचन में कर्मचारी को अपनी पसन्द की यूनियन को कार्यवाहक बनाने में कोई अवरोध नहीं होना चाहिए और इस संबन्ध में मान्यता के प्रश्न का कोई अस्तित्व नही होना चाहिए। दोनों ही पक्षों की वृत्तियों को अनुशासित करने में स्टैंडिंग आर्डरों का अस्तित्व पालन बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है परन्तु आजकल ये स्टैंडिंग आर्डर प्रायः सभी व्यवस्थापकों द्वारा बनाये जाते हैं। यूनियनों का उनकी रचना में कोई स्थान नहीं है। केवल कुछ कार्यावधि के मामलों में कभी कभी उनसे विचार विमर्ष किया जाता है। कुछ मामलों में औद्योगिक

अवार्ड ने स्टैंडिंग आर्डर के लिए निश्चित भूमि पर कब्जा कर लिया है। इस वाद के कब्जे पर हमें कुछ नहीं कहना है। स्टैंडिंग आर्डर का निर्धारण उसी आधार पर माना जाना चाहिए जिस पर अन्य माँगे आधारित हैं और संविदा की एक मूलभूत शर्त होना चाहिए। इन आर्डरों में उन अफसरों के प्रति व्यवहार की व्यवस्था होनी चाहिए जो स्टैंडिंग आर्डर के आधार पर अनुशासन या अन्य कार्यवाही नहीं करते हैं। वर्तमान स्थिति यह है कि अफसरशाही कानूनी व्यवस्थाओं और संविदात्मक अधिकारों की कोई श्रद्धा नहीं करते हैं। खेल के नियमों का पालन दोनों ही पक्षों को समान रूप से करना चाहिए। जब भी ऐसे संविदात्मक नियम बनाए जाएं तृतीय पक्ष के निर्णय के संदर्भ की भी व्यवस्था उसी प्रकार की जानी चाहिए जैसे अन्य अधिकारों या मांगों की की जाती है। सरकार या अभिनिर्णय यंत्र या परिवेदना पंचनिर्णय की स्थायी रचना किसी भी यूनियन के लिए पहुंच के भीतर होनी चाहिए परन्तु आधारभूत या प्रारूपसम्बन्धी परिवर्तनों और विकल्पों को केवल सौदेबाजी के अधिकारियों अर्थात मान्यता प्राप्त यूनियनों द्वारा ही प्रेषित करने का अधिकार होना चाहिए। इन सभी व्यवस्थाओं के परिचालन का एक आवधिक मूल्यांकन बहुत आवश्यक है और ऐसे अनुगामी-अध्ययन या घटना अध्ययनों को प्रकाशित करने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। कर्मचारियों का व्यवस्था सम्बन्धी और ट्रेड यूनियनों का यथार्थ प्रशिक्षण अधिकारी संस्थाओं द्वारा औद्योगिक संबन्ध में क्षेत्र के भीतर बाहर किए गए आवधिक मूल्यांकनों पर विचार विमर्ष के द्वारा किया जा सकता है। यहां सरकार द्वारा निर्मित अध्ययनमंडल बहुत प्रभावी स्थान ग्रहण कर सकते हैं।

मोटे तौर से मूलभूत समस्याएं और उनके हल औद्योगिक सम्बन्ध के सबसे अधिक कंटकाकीर्ण और कठिन क्षेत्र में पाए जाते हैं। उद्योग में मानव सम्बन्धों के इस मूलभूत दैनिक कार्यक्रम और आधारशिला की उचित और पूर्ण स्वीकृति हमें उच्च राष्ट्रीय चित्त वृत्ति निर्माण करने की कुञ्जी प्रदान कर सकती है। एक अच्छी प्रकार से बुनी गई औद्योगिक सम्बन्ध के कार्यक्रम की पार्श्वभूमिका होने पर बाकी की श्रमसमस्याएं अपना योग्य आकार प्राप्त कर लेंगी और अपने विशिष्ट उद्देश्य को ढाल लेगीं। इसके अभाव में औद्योगिक प्रगति का सम्पूर्ण यान पतवार विहीन होकर ववंडर की दिशा में ही जाता हुआ दिखलाई पड़ेगा।

सामूहिक सौदेबाजी

औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में यथार्थ में सामूहिक सौदेबाजी का कोई विकल्प नहीं है। द्विपक्षीय इकरार का स्थान कोई तीसरे पक्ष द्वारा किया गया समझौता नहीं ले सकता है। परन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सामूहिक सौदेवाजी की प्रगति हमारे देश में बहुत धीमी है। राष्ट्रीय आधार पर अभी हाल में किया गया व्यवसायिक बैंकों और बीमा आयोग का द्विपक्षीय समझौता कदाचित सामूहिक मोलभाव की पहली महान विजय है। वेतन आयोगों और वेजवोर्डों के अवार्डों और रिपोर्टों से क्षेत्र बहुत अधिक व्याप्त है, सामूहिक मोलभाव द्वारा दिए गए समझौतों के इस अभाव के तीन कारण दिखलाई पड़ते हैं—

(अ) सार्वजनिक क्षेत्र में यह एक प्रवृत्ति पाई जाती है कि किसी भी स्तर पर आवश्यक स्वतंत्रता से संधिवार्ता करने के लिए आदेश न दिया जाए।

(ब) निजी क्षेत्र में सेवायोजकों के फेडरेशन अपने समान स्वार्थों को सरकार के सामने प्रस्तुत करने के लिए बन गए हैं। वे मजदूरी या कर्मचारियों की सेवा परिस्थितियों के प्रश्नों पर अपने सदस्यों के प्रति बचन देने की जिम्मेदारी नहीं लेना चाहते हैं।

(स) ट्रेड युनियन आन्दोलन का अभी वह आकार नहीं बन सका है कि वह राष्ट्रीय स्तर पर संधिवार्तायें कर सकें। क्षेत्रीय और व्यक्तिगत फर्म के स्तर पर हमारे पास काफी सामूहिक मोलभाव के आधार पर किए गए समझौते हैं। इसे अस्वीकार नहीं किया जासकता है कि एक यूनियन से अधिक का होना और दूसरे यूनियन के कार्यों से प्रभावित किसी यूनियन को दिए गये अधिकारों के कारण भी कुछ हद तक भारत में सामूहिक सौदेबाजी का विकास रुका है। परन्तु इसका मूलकारण न तो कानून है और न यूनियनों की अनेकता। ऊपर वर्णित राष्ट्रीय स्तर के मोलभाव में भी ये कमजोरियां मौजूद थीं और उनका परिहार उन्हीं उद्योगों के श्रमिकों के दबाव से प्रायः हो गया था। ट्रेड यूनियन चेतना के विकास के साथ सामूहिक मोलभाव को राष्ट्रीय स्तर पर भी उसी

प्रकार का एक प्रभावी आकार मिल जाएगा जैसा कि इकाई के स्तर प्राप्त हैं। कानून बना कर इसके विकास की गति को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि प्रायः कानून कोई लक्ष्यपूर्ति नहीं कर सकेगा।

यह सदैव आसान नहीं होता है कि एक बड़ी यूनियन किसी उद्योग की विभिन्न श्रेणियों, क्षेत्रों अथवा फर्मों की मांगों को समायोजित करके एकात्म भाव से व्यवस्थापकों का सामना करें। यदि वह इस करिश्में को प्राप्त भी करले जैसा प्रारम्भ में सभी की माँगों को बढ़ा कर ही किया जाता है तो भी समायोजनों पर संधिवार्ता करना कठिन हो जाता है जो किसी भी सार्थक संधिवार्ता के लिए अवश्यम्भावी हो जाते हैं। जहां यह सेवायोजक के लिए तुलनात्मक रूप में आसान होता है कि वह संधिवार्ता एक बड़े ढंग से कर सके क्योंकि उसे तो केवल अपनी जेब की ही चिन्ता रहती है, वही यूनियन नेता के लिए कठिन होता है क्योंकि उसे यूनियन के विभिन्न क्रोधी सदस्यों के विचारों का ध्यान रखते हुए बात करनी होती है जिन्हें आखीर में उसे अपने कदम की न्यायपूर्णता भी समझानी पड़ती है। यदि कोई यूनियन नेता आर्थिक परिस्थिति की मांग को समझ भी जाए तो भी उसके सदस्यों से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे भी उसी हद तक धैर्य बुद्धि रख सकते हैं। साथ ही बहुत ही थोड़े उद्योग या यूनियन ऐसी हैं जिनकी सदस्यता पूर्णतया समरूपी हों जिससे विभिन्न ग्रेडों या क्षेत्रों में स्वार्थों के संघर्ष को टालने की संभाविता हो। आधुनिक यूनियन नेता को अपनी मजदूरी नीति निर्धारण करते समय अपने ही संगठन में स्वार्थों के संतुलन का पूर्ण ध्यान रखना पड़ता है। संधिवार्ता की मेजपर इस नीति में यदि उसको फेर बदल करना पड़े तो बड़ी दिक्कत आती हैं। प्रायः सभी संधिवार्तायें बन्द कमरे में होती हैं। व्यवस्थापक प्रायः एक 'संवेष्ठना सौदे' के कार्यक्रम पर ही जोर देते हैं। यह उनके संधिवार्ता में दिए गए प्रस्तावों को परीक्षात्मक बना देता है। ऐसी स्थिति में मजदूरों की यह माँग की वार्ता की प्रगति की सूचनायें उन्हें मिलती रहें आसानी से पूर्ण नहीं की जा सकती हैं। यूनियन की टीम में बहुधा अनेक व्यक्ति होते हैं और प्रायः उनकी वृत्तियां भिन्न होती हैं। यदि संधिवार्ता के दौरान अयोग्य व्यक्तियों में झड़प हो जाती है तो बाद का चित्र बड़ा ही कठिन बन जाता है। एक की शान्ति वृत्ति, दूसरे का राजनीतिक रंग, तीसरे का सामान्य दुराग्रह इत्यादि उस समझौतावार्ता की मेज पर अपने निशान छोड़ जाते हैं जहाँ सामूहिक मोलभाव का सौदा पटना है। यदि ऐसी परिस्थिति में यूनियन की आंतरिक शत्रुता भयंकर रूप धारण कर

लेती है तो ऐसी यूनियन जिसने श्रमिक इतिहास के घटनाक्रम से मान्यता प्राप्त की होगी अधिक समय तक नहीं टिक सकेगी और न कुछ प्राप्त ही करा सकेगी। यदि भारत में यह करिश्मा कुछ स्थानों में हुआ होगा तो सामान्य सदस्यों के अज्ञान और सहानुभूति के अभाव से प्रेरित कार्य ने इस विषय में कम भाग न लिया होगा। परन्तु यह कोई महत्वपूर्ण तत्व नही हैं जिसपर एक विश्वस्त नीति के लिए भविष्य के परिगणन आधारित किए जांए। इस चेतना के विकास और जागरण के सामान्य वातावरण जिसके अनेक विश्वास प्रदायक चिन्ह हमें दीख रहे हैं, के साथ ही यह काफी हद तक संभव है कि सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रियांए स्वयं ही यूनियनों की अनेकता को जन्म दे दें विशेष तौर पर श्रेणीवार टूटने वाली यूनियनों को और वह भी उस समय से बहुत पूर्व ही जब तक हम मजदूरी के अंतरों को तर्क शुद्ध करने के लिए कार्य-पद-मूल्यांकन के महत्व को न अपनाने का अर्थ समझ पाएगें। एक आन्तरिक मजदूरी के प्रारूप को स्वीकार करना सामूहिक सौदेबाजी के विकास की महत्वपूर्ण पूर्व आवश्वयकता है और विशेष रूप से ऐसे समय जबकि हमें भ्रम-पूर्ण टाइम-स्केल, ओवर लैपिगं ग्रेड और अर्ध-समान महगाईभत्ता का सामना करना पड़ता है भविष्य में उद्योगानुसार सामूहिक सौदेबाजी को एक प्राविधिक आधार प्रदान करने के लिए वह और भी अधिक जरूरी है। अश्रमिकों की श्रेणियों के ट्रेड यूनियनवाद की तात्कालिक वृद्धि और औद्योगिक कानून में 'वर्कमेन' की परिभाषा द्वारा स्थापित परिसीमाओं द्वारा लादा गया भार जिसकी ट्रेड यूनियन अनुभूति की हैं इस संदर्भ में भावी विकास के चिन्ह प्रकट करते हैं और सामूहिक मोलभाव की प्रक्रिया में इसके भार की अवहेलना भयंकर संकट का कारण बन सकती है।

उपरोक्त विचारों का वर्णन करने में हमारा उद्देश्य भविष्य के एक विश्वासयोग्य साधन के रूप में सामूहिक मोलभाव पर ठंडा पानी डालना नहीं है। वरन् हम इस बात पर विश्वास करते हैं कि भविष्य में ओद्योगिक विवादों का सच्चा हल सामूहिक सौदेबाजी ही प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु इसी कारण हम यह कहने के लिए भी सचेत हैं कि यूनियनों को सरलता से मान्यता प्रदान करने के लिए कानून बनाने में शीघ्रता करने और फिर उस कानून पर सामूहिक सौदेबाजी के विकास के लिए निर्भर रहने से सामूहिक सौदेबाजी की व्यवस्था ही असम्मानित हो जाएगी और उस एकमेव साधन का आधार नष्ट हो जाएगा जोकि भारतीय श्रमिक को अधिक समय तक जीवित रहने वाले लाभ दिला

सकता है। सामूहिक मोलभाव की प्रक्रिया में नियोजित विकास के द्वारा लादी गई परिस्थितियों का विचार हम राष्ट्रीय मजदूरी नीति पर विवेचन करते समय करेंगे। क्योंकि वित्त और मूल्यांकन एवं उद्योग के आर्थिक लाभों की दिशा के अतिरिक्त हम ऐसा अनुभव नहीं करते हैं कि कोई अन्य घेरने वाली परिसीमायें हैं, जो पक्षों के बीच औद्योगिक विवाद में होने वाले पारस्परिक समझौते का वृत्तानुगत कर सकती हैं। इन सारी परिस्थितियों को देखकर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह सुरक्षित और विवेकपूर्ण होगा कि हम ट्रेड यूनियन चेतना के विकास पर विश्वास करें, जो सामूहिक मोलभाव को पुरस्कार वाली अपनी स्थिति प्राप्त करवा दें और यदि कानून द्वारा कोई प्रयत्न यूनियन या सौदे के पक्ष को मान्यता देने के लिए या पंचनिर्णय अथवा अभिनिर्णय पर निषेध लगाने के निमित्त किया गया तो उसका गर्भपाती प्रभाव होगा और सामूहिक सौदेबाजी की अन्तिम सफलता को कठिन और कालक्षेपी बना देगी।

संयुक्त मन्त्रणा

इस विषय का एक आकलन बाम्बे लेदर इन्स्टीच्यूट के श्री वी० जी० मेहत्रास ने अपनी पुस्तक 'व्यवस्था में श्रम भागीदारी–भारत में ओद्योगिक प्रजातंत्र का एक प्रयोग' में किया है। इस पुस्तक के विद्वान लेखक ने 'भागीदारी' के सम्बोध की परिभाषा ऐसी प्रक्रिया के रूप में की है जहाँ प्रशासन की निर्णयकारी शक्ति को समस्त व्यवस्थात्मक क्रिया के क्षेत्र में सभी उचित व्यवस्था के स्तरों पर अपने उचित प्रतिनिधियों के द्वारा किसी औद्योगिक संगठन के कर्मचारी बटा लेते हैं। यह योजना संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों के द्वारा कार्य कर रही है और औद्योगिक प्रजातंत्र के प्रति भारतीय दृष्टिकोण स्पष्ट करती हैं। अभी तक इस प्रयत्न में निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के १०० से अधिक संस्थानों ने भाग लिया है। दिनांक २१-४-६७ के इकनामिक साइन्स में यह अंक सार्वजनिक क्षेत्र में ४१ और निजी क्षेत्र में ८१ दिखलाया गया है। निजी क्षेत्र में काउंसिल सामान्यतः मान्यता प्राप्त यूनियन या यूनियनों से समझौते द्वारा स्थापित की जाती हैं। 'एक संयन्त्र, व एक काउंसिल' का साधारण व्यवहार अपनाया जाता है। उनका आधार ६ से १२ तक का होता है और दोनो ही पक्षों की समानता होती है। श्रमिक प्रतिनिधि या तो चुने जाते हैं या उन्हें मान्यतः प्राप्त यूनियन द्वारा नामांकित किया जाता है। अध्यक्ष और

उपाध्यक्ष पदों को व्यवस्थापकों और श्रमिकों के बीच में अदल-बदल की व्यवस्था का पूर्णरूपेण पालन नहीं किया जाता है। संयुक्त मंत्रियों का चुनाव श्रम और व्यवस्था के प्रतिनिधियों में से नामांकन द्वारा किया जाता है। बैठकों की औसत संख्या प्रति दो मास में एक है और उपस्थिति का औसत ८४% है। काउंसिल के प्रस्ताव और फैसले अधिकतर सर्व सम्मति से होते हैं क्योंकि साधारण बहुमत के फैसले संयुक्त व्यवस्था काउंसिल की आत्मा के विरुद्ध हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि विचार विमर्ष सदैव स्वतंत्र और स्पष्ट ही होता है क्योंकि श्रमिक प्रतिनिधियों के मनों पर बलि हो जाने का भय व्याप्त रहता है। लेखक ने इस भागीदारी को पांच ढंगों से वर्गीकृत किया है—सूचनात्मक, सहवैचारिक, सहयोगी, प्रशासकीय और निर्णयात्मक। उनका यह अनुभव है कि व्यवस्थापक काउंसिलरों को सभी आवश्यक सूचनाए देने में कोई जीवन्त उत्साह नहीं दिखलाते हैं। सहवैचारिक भागीदारी अधिकतर उत्पादन और कर्मचारी संबन्धी मामलों में किया जाता है और सहयोगी भागीदारी कल्याण और सुविधा के क्षेत्रों में दिखलाई पड़ती है। प्रशासकीय और निर्णयात्मक भागीदारी का प्रायः अभाव है और यह विचार उत्पन्न करता है कि काउंसिलों को केवल आकस्मिक और हल्का महत्व दिया जा सकता है। लेखक का कहना है कि इस काउंसिल का स्वरूप 'प्रारूपित माडल इकरार' के नमूने का बनाया गया है और फिर भी उनके विचार से काउंसिल के कार्यक्षेत्र की स्पष्ट परिसीमायें निर्धारित की जानी चाहिए। विशेषतौर पर संधिवार्ता और सहयोग के क्षेत्रों को एक दूसरे से अलग अलग निश्चित किया जाना चाहिए। साथ ही वर्क्स कमेटी के सामान्य कार्यों को संयुक्त व्यवस्था काउंसिल से अलग किया जाना चाहिए। एक उचित रास्ता यह हो सकता है कि एकमेव संयुक्त व्यवस्था काउंसिल गठित की जाए जिसमें अनेक उपसमितियों का समन्वय हो तथा वर्क्सकमेटी के कार्यों का योग्य रीति से प्रवेश हो। हम सामान्यतः विद्वान लेखक के इन सुझाओं का समर्थन करते हैं। साथ ही हम यह कहना चाहते हैं कि संयुक्त व्यवस्था काउंसिल और वर्क्सकमेटी के साथ साथ अस्तित्व की कोई आवश्यकता नहीं है। लेखक यह भी स्वीकार करता है कि व्यवस्थापकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों में संयुक्त व्यवस्था काउंसिल ओर वर्क्सकमेटी के कार्यों के सम्बन्ध में भ्रम है। परन्तु वे यह अनुभव करते हैं कि उनके कार्यों के सम्बन्ध में मतिभ्रम नहीं होना चाहिए क्योंकि संयुक्त काउंसिल नीति संबन्धी विषयों पर विचार करती है जबकि वर्क्स कमेटी दैनन्दिन कार्यक्रम के फलस्व-

रूप उत्पन्न विषयों का भार उठाती है। उन्होंने यह भी अनुभव किया है कि भारत में कहीं भी एक ही संस्थान में संयुक्त व्यवस्था काउंसिल और वर्क्स कमेटी सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर रही हैं। साधारणतया वर्क्स कमेटियों ने कार्य करना बन्द कर दिया है, जहां भी संयुक्त व्यवस्था काउंसिलें स्थापित हो गई हैं। हम यह कहना चाहते हैं कि ऐसा ही होना चाहिए।

यह निर्विवाद सत्य है कि वर्क्स कमेटियों के अनुभवों ने संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों के निर्माण के लिए आधार प्रदान किया है। उनके निर्माण के संबन्ध में कानूनी आवश्यकतायें चालू रखना चाहिए और उन्हें वर्तमान सीमा, जो कि १०० या अधिक श्रमिकों के संस्थान की है, की अपेक्षा उन संस्थानों पर लागू किया जाना चाहिए, जिनकी श्रमिक संख्या २० या अधिक हो। परन्तु यह याद रखना चाहिए कि वर्तमान कानूनी अनिवार्यता प्रभावशाली नहीं रही है क्योंकि उनकी सहचारिक प्रकृति ने सेवायोजक या कर्मचारियों किसी को भी प्रोत्साहित नहीं किया है। वर्तमान यर्क्स कमेटियों के सर्वसम्मत फैसलों को भी व्यवस्थापक शुद्ध सुझाव समझते हैं और उनके निर्णयों पर कोई प्रभावकारी शक्ति नहीं है। अतः वे अधिकतर कागज पर अस्तित्व रखती हैं और उनका कोई जीवन्त प्रभाव नहीं है। उन्हें वास्तव में संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों के पूर्वजों के रूप में चलाया जाना चाहिए और धीरे धीरे उनके कार्यों में अगले पैरा में दिए गए सुझावों के अनुसार वृद्धि करके अधिक प्रभावी बनाना चाहिए। वर्क्स कमेटी और संयुक्त व्यवस्था काउंसिल का अन्तर केवल उनके सम्बन्धित कानूनी और संविदात्मक स्थिति के अनुसार होना चाहिए। वर्क्स कमेटियों के कानूनी-न्यूनतम कार्यों में सुधार करने के लिए समझौते द्वारा प्रायः संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों का निर्माण होना चाहिए।

यह एक सुमान्य तथ्य है कि संयुक्त सहविचार की किसी योजना की सफलता उस वृत्ति या दृष्टिकोण पर निर्भर करती है, जो कि विभिन्न पक्ष कमेटी या काउंसिल के मंच पर उपस्थित करते हैं। इस मंच के कार्यों को औद्योगिक प्रजातन्त्र स्थापित करने के लिए प्रभावी बनाने और उचित वृत्ति के विकास को योग्य वातावरण प्रदान करने के लिए हम समझते हैं कि वर्तमान परिस्थिति में यह आवश्यक होगा कि वर्क्स कमेटी के ही संविधान में निम्नलिखित व्यवस्थाओं को सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए—

(१) वर्क्स कमेटी पर श्रमिक प्रतिनिधि की नियुक्ति गुप्त वोट से ही की जानी चाहिए। ट्रेड यूनियन शत्रुता के संदर्भ में यह आवश्यक है और एक मान्यता प्राप्त और सुरक्षित यूनियन के लिए यह कोई कठिनाई नहीं उपस्थित करेगा। यह मान्यतारहित यूनियन को भी एक आधार भूमि प्रदान करेगा और उसकी क्लेषकारक मूल्य प्राप्ति करने की वृत्ति को भी रोकेगा।

(२) चुने गए मदस्यों का कार्यकाल ३ वर्ष का होना चाहिए और कुछ सदस्यों में से १/३ प्रतिशत अवकाश प्राप्त करें और उनकी जगहों को वार्षिक चुनाव द्वारा भरा जाए। यह कमेटी को स्थायित्व देगा और परिवर्तन की हवाओं को भी एक सुविचारित ढंग से व्यवस्थित करेगा।

(३) व्यवस्थापक और श्रमिक दोनों ही पक्षों द्वारा एक अतिरिक्त सदस्य नामांकित करना चाहिए, जो एक बाहरी व्यक्ति होवे। इससे कमेटी की कार्यवाही के संचालन में एक विशिष्ट और स्वतंत्र सलाह मिलने का मौका मिलेगा।

(४) एक कमेटी में केवल दो ही पदाधिकारी होना चाहिए अर्थात, अध्यक्ष और मंत्री। इन दोनों को भी बदल बदल कर व्यवस्थापकों और श्रमिकों के नामांकित व्यक्तियों द्वारा ग्रहण किया जाना चाहिए। यह पारस्परिक व्यवहार में आदर और जिम्मेदारी का भाव उत्पन्न करेगा।

(५) संस्थान के किसी भी कर्मचारी पर अनुशासनिक कार्यवाही, जैसे विभुक्ति सेवामुक्ति, निलम्बन, स्थानान्तरण, वेतनवृद्धि रोकना या अर्थदण्ड इत्यादि, कमेटी की पूर्व सम्मति का विषय होना चाहिए अथवा बड़े संस्थान में वह उपसमिति द्वारा तय होना चाहिए। ऐसी व्यवस्था के द्वारा कर्मचारियों के मन से भय धुल जाएगा और औद्योगिक संस्थान में प्रजातंत्र और आत्म–अनुशासन का विकास होगा। एक वर्क्स कमेटी के सदस्य के मामले में कोई चार्जशीट या अन्वेशी प्रक्रिया कमेटी द्वारा निर्धारित कार्यविधि द्वारा ही की जानी चाहिए। वर्क्स कमेटी को ऐसा अधिकार दे देने से वह उसके स्तर को उठा देगा और कमेटी द्वारा की गई भर्त्सना का भी अनुशासनहीन शक्तियों को दबाने में प्रभाव होगा। यह भागीदारी को एक सार्थक प्रक्रिया बनादेगी और औद्योमिक अनुशासन और उत्पादन

को एक गम्भीर और उद्देश्यपूर्ण क्रिया में परिवर्तित कर देगी। इस व्यवस्था के अभाव में वर्क्स कमेटी को सौपी गई जिम्मेदारी को उचित सहारा नही मिलेगा और इन पदों का चुनाव दोनों पक्षों को बचनबद्ध नहीं करेगा।

यह परिकल्पित है कि उपरोक्त व्यवस्थायें संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों को ले जाई जाएगी जबकि वे वर्क्स कमेटियों की प्रतिस्थापना करके बन जाएगी। यह भी आवश्यक है कि वर्क्स कमेटियों के कार्यक्षेत्र को बढ़ाया जाए जिससे वे उत्पादकता और कार्यभार को भी सम्मिलित कर सकें और चालू और परिवर्तनीय रीतियो द्वारा होने वाले उत्पादन पर प्रभाव का भी आंकलन कर सके। यह श्रमिकों को अपनी संस्था के उपार्जित लाभ के संबन्ध में एक स्पष्ट चित्र भी दे सकेगा और उन्हें यह जानकारी भी दे सकेगा जिसके आधार पर वे अपनी तर्क शुद्ध अपेक्षायें बनाएगें। सामूहिक सौदेबाजी और सहवैचारिक यंत्र के क्षेत्रों के बीच कुछ समान विषयों पर भी प्रशासकीय निर्णय लिया जाना चाहिए। ऐसा पदोन्नति, स्थानान्तरण, छँटनी, प्लेआफ, सतत सेवाकाल, श्रमिकों का स्थिरीकरण, वरिष्ठता निश्चय इत्यादि के मामलो में आवश्यक होगा। इन विषयों पर मान्यता प्राप्त यूनियनों से सामूहिक मोलभाव की प्रक्रिया द्वारा नीति निर्धारित की जानी चाहिये और उसको पालन करवाने कार्य वर्क्स कमेटियों द्वारा किया जाना चाहिए। इन विषयों पर निर्णय बिना वर्क्स कमेटी के पूर्वसहमति के नहीं लिए जा सकते हैं परन्तु इसके अपवाद के रूप में पदोन्नति के संबन्ध में वर्क्स कमेटी की केवल निरीक्षणात्मक अधिकार हो सकते हैं। सहवैचारिक यंत्र इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी का एक परिशिष्ट क्षेत्र बन जाएगा जोकि मान्यता प्राप्त यूनियन या यूनियनों का अधिकार है। इस प्रकार से केवल वे ही औद्योगिक प्रजातन्त्र का एक प्रभावी स्वरूप प्रदान करेगें।

श्रमिकीकरण की ओर

लाभ में भागीदारी, श्रमिकों को शेयरों का एलाटमेन्ट, संचालकबोर्डो पर श्रम प्रतिनिधियों की नियुक्ति, इत्यादि ऐसी योजनाए हैं जिनके सम्बन्ध में पश्चिमी देशों में उत्साह निर्माण हुआ है। एक चरम रूप यूगोस्लाविया का है जहां एक पूर्ण स्वचालित व्यवस्था है। कानून के द्वारा यह घोषित किया

गया है कि फैक्टरियाँ, खदाने, परिवहन, संवाद वाहन, व्यापार, कृषि, बन सम्पत्ति, नगरपालिका और अन्य आर्थिक उद्योगों को राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में श्रमिक सहकारी संघों द्वारा राज्य की आर्थिक योजना के अन्तर्गत जनता के नाम से चलाया जाएगा। भारतीय मजदूर संघ ने अपने संविधान में 'उद्योगों के श्रमिकीकरण' को अंतिम प्राप्य लक्ष्य के रूप में रखा है। परन्तु यूगोस्लेविया के ढाँचे के अनुसार एक क्रान्तिकारी परिवर्तन न तो संभव ही है और न उचित ही। कुछ अन्य अनुभव भी उपलब्ध हैं, जैसे फ्रान्स में अभी हाल में जनरल डीगाल की सरकार ने एक सरकारी विज्ञप्ति के द्वारा १०० से अधिक कर्मचारियों वाले निजी उद्योगों में लाभ की भागेदारी अनिवार्य कर दी है। तदुपरान्त पश्चिमी जर्मनी का सह-व्यवस्था का अनुभव है, जहाँ शीर्षस्थ रचनाओं जैसे व्यवस्थाबोर्ड, जो दीर्घकालीन नीति निर्धारण करता है, ऐसे समझौते के अनुसार प्रत्येक ११ वां व्यक्ति नियुक्त किया जाता है और श्रमिकों तथा व्यवस्थापकों के समान प्रतिनिधि होते हैं। ये दोनों ही प्रयोग कठिन जलवायु में चल रहे हैं। हमारे देश में राष्ट्रीय उत्पादकता काउंसिल ने अभी हाल में उत्पादकता के लाभ को अंशधारियों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं के बीच बाँटने और पुनर्जोत प्रभाव के निमित्त एक सूत्र विकसित किया है। इस राष्ट्रीय उत्पादकता काउंसिल के सूत्र में गोखले स्कूल आफ इकनामिक्स और पाल्टिक्स पूना के डायरेक्टर श्री वी० एम० डाण्डेकर ने एक शोध इस निमित्त किया है कि ३०% का पुनर्जोत नियोजन श्रमिकों को शेयरों के रूप में दे दिया जाना चाहिए और उनको भी सहस्वामी बना लेना चाहिए। दोनों सूत्र निम्नांकित हैं।

उत्पादकता लाभ के निर्धारण की मद	राष्ट्रीय उत्पादकता काउंसिल का सूत्र	श्री दाण्डेकर का सूत्र
मूल्य में कमी–	२०%	२०%
श्रम को हिस्सा	३०%	३०%
पुनर्जोत	३०%	——
,, श्रमिकों को शेयर	——	३०%
शेयर होल्डरों को	२०%	२०%

दोनों ही सूत्रों में और आगे प्राविधिक परिगणन की आवश्यकता है उदाहरणार्थ, उत्पादकता के लाभ को ज्ञात करने की रीति और विभिन्न श्रेणियों को शेयरों के बटवारे के लिए। व्यवस्थापकों की ओर से ऐसी योजनाओं के लिए एक समान विरोध यह है कि वे तब तक निर्णय की जिम्मेदारी को बाटने को तैयार नहीं हैं जब तक व्यवस्थापकों को उद्योग की सफलता के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है। श्रमिकों के पक्ष से विरोध यह है कि ऐसी योजनायें केवल कुछ ट्रेड यूनियन नेताओं के लिए अच्छे पद प्राप्त करने का ढंग प्रदान करती हैं, जोकि इस प्रक्रिया में पक्ष परिवर्तन कर लेते हैं। कदाचित इसी कारण से यूगोस्लाव ढाँचा किसी कर्मचारी के वोर्ड की सदस्यता का अधिकतम कार्य-काल दो वर्ष का निर्धारित करता है और इस समय भी वे अपने पुराने पद पर कार्य करते रहते हैं केवल वोर्ड की बैठकों की अवधि को छोड़ कर कुछ भी हो इन योजनाओं के बढ़ाने के संबन्ध में यह हिचक समझ में आती है क्योंकि दीर्घकालीन नीति निर्धारण के लिए विशेष योग्यताओं की आवश्यकता रहती है और मामलों की व्यवस्था आसानी से सर्वसाधारण श्रमिकों द्वारा चुनाव की प्रक्रिया के आधीन नहीं की जा सकती है। इस संबन्ध में यह नोट करना आवश्यक है कि यूगोस्लेविया के निर्वाचित लोग नीचे की संस्था अर्थात व्यवस्थापक संस्था को नामांकित करते हैं, जबकि फेडरल जर्मन रिपब्लिक में कर्मचारी और सह-निर्धारण के कार्यों को वर्क्स काउंसिल के अधिकार क्षेत्र में रखा गया है और आर्थिक मामलों में वर्क्स काउंसिलों को केवल सह-निर्णय का अधिकार है। इंगलैण्ड और अमेरिका में सेवायोजक अभी भी क्षेत्र का स्वामी है। परन्तु ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस इस दृष्टिकोण को लेकर खड़ा है कि ट्रेड यूनियनवादियों को नीतिनिर्धारण में और एक औद्योगिक इकाई के दैनन्दिन कार्यक्रम में व्यवस्था के सभी स्तरों पर अधिक से अधिक हिस्सा मिलना चाहिए।

संयुक्तराज्य अमेरिका में अधिकतर दृष्टिकोण व्यवस्था की जिम्मेदारी को बांटने के विरुद्ध ही है। उनका कहना है कि व्यवस्थापकों का कर्तव्य है कि वे व्यवस्था करें और ट्रेड यूनियनवादियों का कर्तव्य है कि वे अपने सदस्यों के स्वार्थों की रक्षा एवं वृद्धि करें और व्यवस्था में भागीदार न बनें। कहीं एक सीमा-रेखा खींची जानी चाहिये। कुछ अधिकारी विद्वानों का यह अनुभव है कि व्यवस्था में श्रमिकों की भागीदारी का एक विश्वास भारत के

द्वारा प्रतिज्ञाबद्ध लक्ष्य के विरुद्ध है, जिसके अंतर्गत वह एक स्वतन्त्र ट्रेड यूनियनवाद और स्वतन्त्र सामूहिक सौदेबाजी स्थापित करना चाहता है।

उपरोक्त प्रयोगों और सुझावों से हमें बहुत ही सतर्क निष्कर्ष निकालने पड़ेंगे और मानवीय प्रकृति और एक आदर्श अर्थ-सामाजिक ढाँचे की आवश्यकताओं के अध्ययन के मजबूत आधार पर अपने देश की संस्कृति के अनुरूप ही एक क्रिया की दिशा निश्चित करनी पड़ेगी। भारतीय विचारों की मुख्य प्रवाहिका से दो तत्वों का सुझाव मिलता है, जिनके आधार पर हम विश्वासपूर्वक इस विषय पर अध्ययन कर सकते हैं। भारत में यह माना गया है कि सम्पत्ति किसी एक व्यक्ति की नहीं होती है परन्तु यह परमात्मा ने विश्वास या न्यास के रूप में सारी संसृति को दी है। व्यावहारिक रूप में इसका अर्थ यह होता है कि सारी सम्पत्ति पर राष्ट्रीय परिसीमाओं के भीतर राष्ट्र का निरपेक्ष अधिकार है और यह केवल पूंजीपतियों या व्यवस्थापकों की ही जिम्मेदारी नहीं है कि वे उनके सही विनियोग को तय करें। द्वितीयतः भारतीय व्यवहार में यह माना जाता है कि किसी भी कार्यक्रम में रूप ऐसा होना चाहिए, जो उस आत्मशक्ति की अनुगामी हो जो व्यक्तिओं को कार्यरत करती है और किसी भी विशिष्ट ढांचे में कोई भी अपवित्र या दबाव डालने वाली बात नहीं है। वास्तव में भारत की दूरदृष्टि इतनी सूक्ष्म है कि यदि योग्य भावना हो तो किसी भी कार्यक्रम के स्वरूप को अच्छे काम में लगाया जा सकता है क्योंकि भावना के समक्ष स्वरूप का महत्व नहीं है। आत्मा किसी का भी उपयोग कर सकती है परन्तु उसके अभाव में कुछ भी अच्छा संभव नहीं है।

उपरोक्त विचार हमें दो महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर ले जाते हैं। वे निम्नांकित हैं—

(१) जनसमूहों को अपने लिए सामूहिक कार्यक्रम का स्वरूप सामूहिक विवेक के अनुसार निश्चित करने का स्वयं अधिकार होना चाहिए और जनता पर कोई मत या सिद्धान्त लादा नहीं जाना चाहिए।

(२) नीति का प्रवाह जनता की ओर अथवा श्रम की ओर उन्मुख होना चाहिए। परिसीमन विचार केवल राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के अनुसार

राष्ट्रीय संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग का होना चाहिए। परन्तु समाज की आवश्यकताओं के अनुसार विकास या परिवर्तन के इन विचारों के अतिरिक्त, पूंजीपतियों द्वारा पूंजीविनियोग में सामान्य लाभ से अधिक की मांग और व्यवस्थापकों की सर्वकालिक श्रेष्टता के विचारों को सम्माननीय नहीं समझना चाहिए।

उपरोक्त आधार पर हम निष्कर्ष निकाल सकते है कि राष्ट्र और सरकार को उद्योग में क्रमगत श्रमिकीकरण का विकास करने को प्रस्तुत रहना चाहिए और इसके लिए लाभ की भागीदारी, शेयरों का बटवारा, सह-निर्धारण संयुक्त काउंसिले, श्रमिक सहकारी संघ इत्यादि जैसे साधनों को अपनाना चाहिए। इस सम्बन्ध में औद्योगिक कानून की अनुसूचियों में इन भागों को संरक्षण होने के अतिरिक्त कोई विशिष्ट कानून नहीं होना चाहिए और उनकी तैयारी अन्य औद्योगिक भागों के समान ही होना चाहिए। इसके लिए कोई कठोर नियम नहीं होना चाहिए परन्तु इस सम्बन्ध में उठाई गई मांग को औद्योगिक विवाद समझा जाना चाहिए और उनका फैसला करते समय न्याय प्रतिष्ठानों को ऊपर दी गई निर्देशरेखायें विदित होनी चाहिए। ऐसी आशा की जा सकती है कि इस प्रकार की व्यवस्था हमें सारे देश की विशाल सीमाओं के विस्तार में श्रमिकों द्वारा प्रदर्शित उत्साह और योग्यता और सेवायोजकों द्वारा प्रदर्शित सदवृत्ति और अवरोध के द्वारा एक धीरे धीरे विकसित होने वाला ढांचा प्राप्त हो जाएगा।

इस संघर्ष में से विभिन्न योजनाएँ कार्यरत हो जाएँगी विचार और व्यवहार के आधारभूत सिद्धान्तों द्वारा प्रतिपादित सामान्य नियमों के अन्तर्गत प्रगति की इस दिशा के विकास के लिए मानव की अपूर्व बुद्धि का विश्वास किया जा सकता है।

संराधन

अपने वर्तमान रूप में श्रम संराधन तंत्र की अपने प्रारम्भिक जीवनकाल में बड़ी उपयोगिता थी और आज भी नए संस्थानों के लिए अथवा नए यूनियनों के लिए उस समय तक जब तक कि वे सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया और परिसीमाओं और औद्योगिक कार्यवाही के रूपों के अच्छे जानकार नहीं बन

जाते हैं, वह एक उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति करता है। वह वास्तव में एक ज्ञान-प्रदायक पद है, जिससे संराधन अधिकारी औद्योगिक विवादों पर विचार करते समय अपने विशद ज्ञान और सिद्धहस्तता का प्रयोग अपने सामने प्रस्तुत मामलों पर करके एक सही दृष्टि प्रदान करता है। इस ढंग के निश्चित लाभ हैं जबकि औद्योगिक संबन्ध की स्थिति कच्ची और रूखी हो। प्रभाव रूप में संराधन का मंच एक ऐसा मौका उभयपक्षों को प्रदान करता है जबकि वे अपनी दृढ़ता में परिवर्तन कर सकते और समझौतों पर पहुंच सकते हैं। कदाचित उभयपक्ष जब एक बार वह सब जान लेते हैं जो कुछ संराधन अधिकारी को उनसे कहना है तो संराधन की उपयोगिता नष्ट हो जाती है और वह एक अनावश्यक अवरोध बन जाता है, जोकि उन्हीं तर्कों को बार बार उबा देने वाली स्थिति तक दुहराकर देरी करता है। इन सबसे ऊपर जब विभिन्न कार्यवाहियों के लिए निर्धारित अवधि की सीमाओं का पालन, संराधन अधिकारी के पास कार्य की अधिकता, पक्षों की अनुपस्थिति विशेषतया सेवायोजकों की या अन्य कारणों से नहीं होता है तो संराधन का सारा प्रयत्न आन्दोलनकारी प्रवृत्तियों को हवा देने का कार्य करने लग जाता है। ऐसी ही वर्तमान स्थिति है। वास्तव में प्रभाव की दृष्टि से संराधन अधिकारी सरकारी हस्तक्षेप का एक विसापिटा विस्थापित ओर प्रभावहीन स्वरूप प्रस्तुत करने लगा है, जिसे समाप्त कर देने के लिए दृढ़ आधार बनता जाता है।

परन्तु हम लोग यह विश्वास करते हैं कि संराधन अधिकारी की उपयोगिता ट्रेड यूनियन का वस्वस्थापक जीवन के प्रारम्भिककाल में है और उस समय भी हो सकती है जबकि उभयपक्ष संबन्धों को पूर्ण रूपेण समझता हो क्योंकि वह एक ऐसा स्थान उपलब्ध कराता है जहां एक सम्मान जनक रीति से दूसरे विचार उठ सकते हैं। इसलिए शक्ति और कार्य के ढंगों में कुछ परिवर्तनों के साथ उसे चलता रहना चाहिए। प्रथम तो उसे निर्धारित समय-सीमाओं का कठोर पालन करना चाहिए। विषेषतया उन मामलों में जहां उसकी प्रक्रिया केवल व्यवहारिक प्रकृति की हो क्योंकि ऐसी स्थिति में पक्षों को संराधन कान्फ्रेन्स में कुछ सीखने को नहीं रहता और वे उसकी अवहेलना करना चाहते हैं तो ऐसी स्थिति में संराधन तंत्र को बाधक नही होना चाहिए दूसरे संराधन अधिकारियों को कुछ पुलिस अफसरों या अन्य पालक सत्ताओं जैसी प्रशासकीय शक्तियाँ भी प्राप्त होनी चाहिए, जिसके द्वारा वे अपने निर्णय का कुछ मामलों में, जो उन्हें सोंपे गये हैं, पालन भी करवा सकें।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें 'श्रमिक अभियोजकों' की सहायता मिलनी चाहिए जिनके कार्यों के सम्बन्ध में हमने अन्य स्थान पर लिखा है ।

इस संदर्भ में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि हम अपरे विचार प्रस्ताव में अन्त तक संराधन अधिकारियों के लिए एक अतिरिक्त और जीवन्त कार्य की परिकल्पना कर रहे हैं। उस कार्य को साराशंत: निम्नलिखित रूप में रखा जा सकता है–

(१) विमुक्ति, सेवामुक्ति, स्थानान्तरण इत्यादि अनुशासनिक कार्यवाहियों के मामलों में जोकि वैयक्तिक कर्मचारी के सामाजिक और आर्थिक जीवन को प्रभावित करते हैं किसी भी उत्पीड़ित कर्मचारी द्वारा स्वयं अपने प्रतिनिधि द्वारा या किसी मान्यता प्राप्त यूनियन द्वारा संराधन अधिकारी के पास पहुंचा जा सकता है। इस प्रकार से पहुंचने पर संराधन अधिकारी गुणों के अनुसार मामले का फैसला करने के लिए सक्षम है और अपने निर्णय का पालन करने के लिए सेवायोजक को बाध्य कर सकता है। परन्तु उसके फैसले के विरुद्ध अपील किसी भी पक्ष द्वारा निश्चित समय के भीतर की जा सकती है। परन्तु उस काल में भी निर्णय बाध्य करेगा जब तक कि अपीलेट कोर्ट द्वारा अंतिम फैसला न कर दिया जाए। ऐसे मामलों में जो भी विभिन्न फैसले किए जाएगें वे इस संबन्ध में निर्देश-रेखाओं का कार्य करेगें।

(२) अवार्डों के निर्वचन, समझौतों इत्यादि या उनकी व्यवस्थाओं के पालन में संराधन अधिकारी एक पालक अधिकारी की हैसियत से किसी भी संबन्धित कर्मचारियों की किसी भी मान्यताप्राप्त यूनियन द्वारा उनकी बात सुन सकता है। उस मामले में निर्णय लेने और पालन करवाने का वैसा ही अधिकार होगा।

हम समझते हैं कि उपरोक्त अधिकार संराधन अधिकारी में निहित होने चाहिए और उसे शीघ्र कार्यवाही करना चाहिए। यह उस अन्याय को रोकने के लिए है, जो श्रमिक पर किया जा रहा है और जिन्हें बहुत प्रकार से तंग किया जा रहा है और किसी बहाने से ट्रान्सफर या पदमुक्ति करके एक हल्की रीति से जीवन की सामान्य गतिविधि से विच्छिन्न कर दिया

जाता है। इसी मामले में हम देखते हैं कि अनेक भूखहड़तालें और प्रतिवाद जन्म लेते हैं, जिनका कोई लाभ नहीं होता है और जो केवल श्रमिकों में घोर निराशा का ही निर्माण करते हैं। हम समझते हैं कि यह शक्ति उस समय भी आवश्यक है जबकि यह तय कर दिया गया हो कि इस प्रकार की कार्यवाही से पहिले, वर्क्स कमेटी की पूर्व सहमति चाहिए। क्योंकि वर्क्स कमेटी में अन्तर यूनियन शत्रुता के द्वारा या निर्वाचन के प्रतिफलों के रूप में उत्पन्न बाधा की अवहेलना नहीं की जा सकती है। कानून को अन्य स्थानों के समान ही यहां भी व्यवस्था करनी चाहिए यद्यपि इस प्रक्रिया में संरक्षण हेतु स्थापित व्यवस्था का दुर्पयोग करने का मौका दस अपराधी व्यक्ति भी उठा सकते हैं। इसी प्रकार अवार्ड या समझौते इत्यादि के अधिकारों को पालन के विचार से आगे मुकदमेबाजी की छूट नहीं होनी चाहिए। एक प्रशासकीय सत्ता द्वारा उसका पालन करवाने की क्षमता होनी चाहिए जब तक कि वह यह विचार न करे कि समझौते या अवार्ड इत्यादि के मामले में उसे न्यायपालिका से फैसला लेना आवश्यक है। इन शक्तियों को देने से संराधन अधिकारियों के कार्य अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावी हो जाएगें और वर्तमान व्यवहार की महान त्रुटियों को दूर करने में काफी हद तक सहायक होंगे जोकि समय समय पर गम्भीर औद्योगिक उत्पातों के कारण बनते हैं और एक बड़े क्षेत्र पर विखरे श्रमिकों के लिए प्रायः उत्पीड़न उत्पन्न करते हैं। यहां हम यह कह देना उचित समझते हैं कि वर्तमान संराधन पत्र को और अधिक दृढ़ बनाने के लिए उनकी संख्या बढ़ानी चाहिए ओर श्रम कार्यालयों में संराधन अधिकारियों और उनके सहयोगी व्यक्तियों का योग्य पारिश्रमिक बढ़ाया जाना चाहिए। इससे पहला लाभ यह होगा कि उनके कार्य की गति तेज होगी और दूसरे उन्हें सेवायोजकों की धन की पोटली के लालच में पड़ने से रोका जा सकेगा, जिससे वे गरीब से गरीब कर्मचारियों के लिये तथा उनसे सम्बन्धित जीवन पहलुओं पर स्वतंत्र व दृढ़ फैसले लेने में समर्थ हो सकेंगे।

अभिनिर्णय

औद्योगिक सम्बन्ध के वर्तमान संदर्भ में अभिनिर्णय की आवश्यकता स्पष्ट है। संराधन की प्रक्रिया के पूर्ण होने पर यदि आवश्यक हो, प्रत्येक

पक्ष को यह छूट होती है कि विवाद को अभिनिर्णय के सुपुर्द कर सके। मामला अभिनिर्णय को सौंपने सम्बन्धी सरकार का वर्तमान स्वच्छंदता पूर्ण अधिकार आगे नहीं चलना चाहिये। बल्कि इसके स्थान पर अभिनिर्णय अधिकारी को यह छूट होनी चाहिए कि वह प्राथमिक सुनवाई के आधार पर उसकी उपयुक्तता की जांच कर ले और तब उसे स्वीकार या अस्वीकार करे। औद्योगिक ट्रिब्युनलों की नियुक्ति श्रम विभाग में निहित नहीं होनी चाहिए वरन् सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा अथवा किसी अन्य सत्ता, जिसे उन्होंने शक्ति प्रदान की हो– उसके द्वारा की जानी चाहिए। विमुक्ति अथवा सेवामुक्ति जैसे मामलों में अभिनिर्णय यंत्र की शक्तियों को बढ़ाया जाना चाहिए और अभिनिर्णय अधिकारी के लिए यह आवश्यक होना चाहिए कि वह मामलों की नए सिरे से गुणों के आधार पर परीक्षा करें और केवल कार्यविधि के नियमों की अनुरूपता की रक्षा करने में ही न लगे रहें। इसी प्रकार जब कोई विवाद कोर्ट के सामने चल रहा हो, तो सेवायोजक को कर्मचारी की सेवाओं को उसी आधार पर जोकि विवाद का विषय है समाप्त करने से रोका जाना चाहिए और यदि वह अन्य किसी आधार पर ऐसा करना चाहे तो उसे कोर्ट की पूर्व सहमति प्राप्त करना चाहिए। मजदूरी भुगतान, श्रमिक हर्जाने इत्यादि के विधेयकों के अन्तर्गत न्यायपालिका तंत्र की विभिन्नता को कम करके श्रमिकों के लिए एक सुसम्बद्ध न्यायव्यवस्था का ढांचा खड़ा किया जाना चाहिए और यह ढांचा कार्यपालक प्रत्यंगों पर किसी भी प्रकार से निर्भर नहीं होना चाहिए जैसे कि अपनी नियुक्ति इत्यादि के लिए। यहां तक कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय में भी श्रमिकों के लिए एक अलग पीठ होना चाहिए और ऐसी स्थिति में एक अलग श्रम एपीलेट ट्रिब्युनल की कोई आवश्यकता नहीं रह जाएगी। श्रमिकों के लिए न्याय की लागत कम से कम की जानी चाहिए और श्रमिकों की ओर से दरख्वास्तों पर केवल मामूली स्टाम्प फीस लगनी चाहिए। अभिनिर्णय अधिकारी के अवार्ड और उनके सम्मुख पंजीकृत समझौतों को एक कानून का दर्जा दिया जाना चाहिए जिससे उनका पूर्ण और उचित पालन करवाया जा सके।

अनुशासन कोड

औद्योगिक झगड़ों को तर्कशुद्ध रीति से निपटाने के लिए अनुशासन कोड औद्योगिक संबन्ध के पक्षों द्वारा एक प्रयत्न रहा है। परन्तु जैसे कि कोई

व्यक्ति औद्योगिक संबन्ध के व्यावहारिक पहलू पर उतर आता है तो उसे यह दिखलाई पड़ने लगता है कि उसका प्रयोग और अधिक दुख उत्पन्न करता है अपेक्षा उसकी जोकि यह दूर करना चाहता है। एक ओर तो यह किसी मान्यता प्राप्त यूनियन द्वारा अपने ही सदस्यों और मान्यतारहित यूनियन के सदस्यों पर क्रूरता को प्रोत्साहित करता है और दूसरी ओर यह व्यवस्थापकों के लिए असंभव परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ जब किसी प्रमुख विभाग में या संस्था की श्रेणी में या एक विशिष्ट क्षेत्र में किसी मान्यतारहित यूनियन द्वारा हड़ताल शुरू कर दी जाती है। औद्योगिक संरचना में अंतर सम्बन्ध इतने जटिल हैं कि उनका किसी एक तक पूर्ण नियम अथवा वस्तुओं की तर्क शुद्ध योजना द्वारा अधिशासन नहीं किया जा सकता है क्योंकि ये अंतरसम्बन्ध जो परिस्थितियां उत्पन्न करते हैं प्रायः घबरा देने वाले और विरोधाभासी होते हैं। कोड का प्रायः निर्वाचन इस प्रकार से किया जाता है कि व्यवस्थापकों और मान्यतारहित यूनियनों के मध्य किसी भी प्रकार का शब्दों या पत्रों का विनिमय नहीं होना चाहिए। इसके कारण या तो असीम झगड़ें या विखरे हुए युद्ध प्रारम्भ हो जाते हैं। मान्यता प्राप्त यूनियन भी कोड के सभी प्रत्यंगों का आदर करने में अपने को असमर्थ पाती हैं। इस कोड के विभिन्न स्पष्टीकरणों का विभिन्न संस्थानों में प्रयोग किया गया है और सार्वजनिक क्षेत्र में कुछ मामलों में इनको कठोरता से लागू करने का प्रयत्न किया गया है। समय समय पर दिखलाई पड़ने वाली उसकी सफलता संस्थान की दृढ़ स्थिति के कारण हैं न कि किन्हीं प्राकृतिक तत्वों के कारण। यह कर्मचारियों के दुख और भग्नाशा में प्रतिफलित हुआ है जोकि ट्रेडयूनियन आन्दोलन के प्रति भी उदासीन हो गए हैं। अपने भाग्य को सुधारने के प्रत्येक साधन में विश्वास खोकर ऐसे कर्मचारीगण एक प्रकार से सूखी लकड़ी में बदल गए हैं और प्रायः स्वेछाचारी व्यवहार करते हुए देखे जा सकते हैं और सभी प्रश्नों की ओर अकुशल अनुत्तरदायी और सनकी दृष्टिकोण अपना लेते हैं। औद्योगिक सम्बन्धों में अनुशासन कोड को अभी भी उपयोगी उद्देश्य की पूर्ति करना है और उसकी किसी व्यवस्था को कानून में बदलने की जल्दी नहीं करना चाहिये।

ऐच्छिक पंचनिर्णय

औद्योगिक सम्बन्ध की अनेक कटीली समस्याओं का हल ढूढ़ने का एक आदर्श ढंग उभयपक्षों द्वारा संयुक्त रूप से पंचनिर्णय व्यवस्था का उपयोग

करना है। औद्योगिक अभिनिर्णय के अन्य ढंगों में विवाद के प्रत्यक्ष मामलों के अतिरिक्त राष्ट्रीय और सामान्य परिस्थितियों पर भी विचार करना ट्रिब्युनल के लिए आवश्यक होता है। ऐच्छिक पंचनिर्णय ऐसी अनिवार्यताओं के बीच कार्य नहीं करता है। यह सामूहिक सौदेबाजी का ही प्रकार है। पंच-निर्णयकर्त्ता का कार्य यह होता है कि ऐसा हल निकाले जिसे स्वीकार करना दोनों ही पक्षों के हित में हो। जैसा कि एक लेखक ने लिखा है, "एक ऐसा हल है जिसे उन्होंने स्वयं ही ढूढ़ लिया होता यदि अपने क्रोध पर काबू रखा होता और उतने ही मधुर और तर्कशुद्ध होते जितने कि आर्थिक पुस्तकों के उनके माडल।" हमारे देश में ऐच्छिक पंचनिर्णय की प्रगति काफी उत्साह-वर्धक रही है यद्यपि हालही में उसके प्रति कुछ क्षेत्रों में अविश्वास पनप उठा है। परन्तु यह श्रम पंचनिर्णय के क्षेत्र में प्रशिक्षण और निर्देशन के अभाव के कारण हुआ है। अभी हालही में एक संस्था ऐच्छिक पंचनिर्णय के प्रोत्साहन के लिए बनी है और उसने इस बात की आवश्यकता अनुभव करली है कि एक वैयक्तिक पंचनिर्णयकर्त्ता का विकास ऐसे समय किया जाए कि उसे दोनों ही पक्ष स्वीकार कर सकें। हमारे पास अब अनेक व्यक्तिगत पंचनिर्णयकर्त्ताओं के बोलते हुए अवार्ड और अनेक उदाहरण हैं जबकि उन्होंने टेकनिकल मूल्यांककों की सहायता पंचनिर्णय के विषय के सम्बन्ध में फैसला करने से पहिले ली है। अभी भी अनेक पंचनिर्णायक यह बात दिमाग से नहीं निकाल सके हैं कि उनका फैसला किसी प्रकार से व्यापक है। न्यायवादिता सिद्धान्त में पंचनिर्णायक के मन की एक अभिमति ही मानी जाती है, क्योंकि न्यायिक पहुंच समझौते के लिए सहायक नहीं होती। एक पंचनिर्णय का कार्य कोई हल पालन करवाना नहीं है वरन एक समझौता खोजना है, जिसपर दोनों ही पक्ष सहमत हो सकें। इसलिए कि ऐच्छिक पंचनिर्णय का यह मार्ग व्यवहार में अपनाया जा सके—यह आवश्यक है कि, राष्ट्रव्यापी आधार पर कुछ मोटे तौर पर संबोध ऐच्छिक पंचनिर्णय के सम्बन्ध में बनाए जाएं। क्योंकि यह उन व्यक्तिओं द्वारा उत्तमरूप से किया जा सकता है, जिन्होंने इस प्रकार की राष्ट्रीय सेवा के लिए विशिष्ट कुशलता का विकास कर लिया है। उचित तरीका यह होगा कि पंचनिर्णायकों की एक सूची घोषित की जाय, जोकि श्रमिकों और सेवायोजकों के केन्द्रीय संगठनों को मान्य हों। तभी विवाद के विभिन्न पक्षों के लिए यह आसान होगा कि इस सूची से किसी व्यक्ति की सहायता की प्रार्थना कर सकें। औद्योगिक सम्बन्ध पर अनेक विचार गोष्ठियों में भी इन सदस्यों की उपस्थिति अभिनन्दनीय होगी जहां पर अधिक स्वतंत्र

वातावरण में मूलभूत और विशिष्ट समस्याओं का विवेचन होता है। अनेक अनुसंधान कर्त्ता संगठन और काउंसिलें भी योग्य और प्रतिष्ठित पंचनिर्णायकों के सुझाओं के प्रकाश में द्यौद्योगिक सम्बन्ध के विशिष्ट पहलुओं की खोज करेगें और ऐसे प्रकल्प ले सकते हैं, जो किसी औद्योगिक विवाद में विवेचन का आधार बन सकते हैं।

इन पंचनिर्णायकों के द्वारा किया गया विचार या कही गई बात के चारों ओर व्यवस्थित ज्ञान और व्यवहारिक अनुभव का एक संग्रह बन जाएगा और मजदूरी-निर्धारण, भृत्ति-प्रभेद सामाजिक-लागतें और आर्थिक विकास, अल्प सुविधायें इत्यादि जैसे कठिन मसलों को तय करने के लिए संदर्भ की एक सामान्य योजना बन सकेगी। प्रायः वे सभी महत्वपूर्ण विषय जो यूनियन के मांग पत्र में आते हैं, कि उनके लिए कोई निश्चित स्थायी सिद्धान्त या नियम नहीं बनाये जा सकते हैं। सामूहिक– विनिमय में जो समझौते होते हैं यह नहीं स्पष्ट करते कि समझौते के समय दोनों पक्षों के मन में क्या चल रहा था। यह न्यायालयों का कार्य है कि प्रमाण-विधि (केस ला) निर्धारित करें। परन्तु पंचनिर्णायक बाध्य नहीं हैं कि वे प्रमाणविधि बनाने के लिए जोरदार प्रयत्न करें। उनके एवार्डों में पूर्व मामलों के निर्णयों के संदर्भ हो सकते हैं परन्तु मजदूरी जैसे मामलों में पूर्व–विधि अनिवार्यतः लागू नहीं की जा सकती है। एक प्रकार से महत्वपूर्ण विवादों में पंचनिर्णायकों द्वारा दिये गए निर्णय हमें जीवन्त सामान्य अधिनियम प्रदान कर सकते हैं, जो प्रत्येक अवधि में चालू व्यवहार या चलन के आधार पर विकसित हीता है। इसमें मानवमात्र का सुविचार पाया जा सकता है और यह ऐसे नियमों और प्रवृत्तियों का सुझाव दे सकता है, जो औद्योगिक और आर्थिक जीवन के आधुनिक स्वरूप द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में ठीक मानव सम्बन्धों के समायोजन के लिये सहायक हो सकता है।

इसलिये कि पंचनिर्णायक अपने कार्य को ठीक प्रकार से कर सकें यह आवश्यक है कि उन्हें तकनीकी मामलों का अच्छा ज्ञान हो–जिनका विवाद के निर्णय में भारी महत्व होता है। नौकरशाही, वकील, अध्यापकों, व्यवसायियों या तकनीशियनों जैसा कोई ऐसा पेशा नहीं हो सकता है जो हमें स्वयंभू पंचनिर्णायक प्रदान कर सके। पंचनिर्णय एक उच्चतर व्यवहार–कुशल–पेशा है जो अपने आप विकसित होना चाहिये यद्यपि कर्मचारी-मैनेजर, वरिष्ठ ट्रेड

यूनियनवादी इस पेशे को तुलनात्मक सुविधा से अपना सकते हैं। पंचनिर्णायक की इज्जत (आदर) किसी भी समाज के लिये वह सबसे बड़ा धन है, जो वह अपने ऊंची अवधारणा, संतुलन एवं मेधा वाले व्यक्तियों में खोज सकता है। ऐसे व्यक्ति जितना ही अधिक विवाद के शत्रुपक्षों की बात शान्ति से सुन सकेगें और उनकी सापेक्षिक स्थितियों को एक ठीक परिप्रेक्ष्य में रख सकेगें जिससे एक उत्तर प्राप्त हो सके, ठीक उसी प्रकार से जैसे बीज से फल की प्राप्ति होती है, उतना ही वह समाज औद्योगिक विवादों को गर्मी के स्थान पर प्रकाश से हल करने में योग्य बन जायेगा। यह उचित है कि हम ऐसे व्यक्तियों को अच्छा भुगतान करें और उनकी सेवाओं का प्रयोग करने वाले यूनियन और व्यवस्थापक बराबर बराबर भार उठावें। अपने आमन्त्रण में दोनों ही पक्षों को बराबर बराबर दांव लगाना चाहिये जिससे इनको एक संतुलित आधार मिले और इनके पेशे को उच्च स्वीकृति और सम्मान मिले जिसके बिना इस कार्य को उठाना योग्य नहीं होगा।

हड़तालें

हड़तालें श्रमिक का एक वैधानिक शस्त्र है। इस शब्द में अन्दर रहो-हड़ताल, कलमबन्द हड़ताल सहानुभूति-हड़ताल, टोकेन-हड़ताल और भूख-हड़ताल भी सन्निहित मानना चाहिये। सार्वजनिक, आकस्मिक अवकाश को भी एक हड़ताल का ही स्वरूप मानना चाहिए। इस शब्द में धीरे-चलो, तोड़-फोड़ और अवैधानिक जेल शामिल नहीं मानना चाहिये। ये वाद के रूप दूषित और समाजविरोधी तरीके हैं और इन्हें हतोत्साहित करना चाहिये। 'कानून के मुताबिक कार्य, विरोध प्रदर्शन का एक ऐसा रूप है, जिसका आधार भिन्न है और उसे विरोध का एक वैधानिक स्वरूप मानना चाहिये। 'रोष प्रदर्शन' हड़ताल, जिसमें ओवरटाइम करने से मना किया जाये, अनुसूची के अनुसार अन्तिम बस को चलाने से इनकार करना आदि शामिल हैं, की परीक्षा उद्योग और एक्शन के समय पर विचार करके होनी चाहिये कि वह हड़ताल है या केवलमात्र विरोध। तूफानी हड़ताल (एक एक फैक्टरी द्वारा क्रम से की जाने वाली) और क्रान्तिकारी सामान्य हड़तालें प्रायः राजनीतिक प्रकृति की होती हैं। परन्तु उससे बड़े पैमाने या ट्रेड यूनियन उद्देश्य से की जाने वाली सहानूभूतिपूर्ण सामान्य हड़ताल या 'बन्द' को भिन्न समझना चाहिये। इनकी बारम्बारता और अवधि वे संगत आधार हैं जिनके द्वारा यह ज्ञात किया जा

सकता है कि उन्हें एक क्रान्तिकारी उथल-पुथल की प्रस्तावना या तैयारी माना जा सकता है। इसी प्रकार एक टोकेन स्ट्राइक की पुनरावृत्ति किसी भी प्रतिष्ठान में उसकी प्रकृति को एक वैधानिक हड़ताल से 'शरारत' में बदल सकती है।

ऐक्ट की वर्तमान परिभाषा के अनुसार स्ट्राइक्स या तो वैधानिक या अवैधानिक हो सकती हैं। उन्हे अवैधानिक माना जाता है जब कि वे ऐक्ट (धारा २२ और २३ औद्योगिक संबन्ध ऐक्ट) के खिलाफ हों या धारा १० (३) के अंर्तगत आदेश के प्रतिकूल हों। इन व्यवस्थाओं का प्रभाव यह है कि जनोपयोगी संस्थानों की सभी हड़तालों को अवैधानिक करार दिया जाये, क्योंकि एक ओर तो उनके लिये कम से कम १४ दिनों का नोटिस आवश्यक है और दूसरी ओर वे वैधानिक नहीं रहतीं जब संराधन अधिकारी ने विवाद में मध्यस्थता कर दी हो जिसको करने के लिये वह १४ दिन के नोटिस की अवधि में ही प्रति-बाधित है। हड़तालों की वैधानिक रोक एक कुख्यात असफलता सिद्ध हो रही है क्योंकि वह हड़ताली परिस्थिति के व्यवहारिक सत्यों की उपेक्षा करती है और हड़ताली के मनोविज्ञान के निकट अध्ययन पर आधारित नहीं जान पड़ती है।

हड़ताल प्रायः विरोध या शक्ति का प्रदर्शन होती है। भारतीय परिस्थिति के संदर्भ में युद्ध का अंतिम-लड़ाई वाला रूप संभाव्य नहीं है। अपने चालू रूप में हड़तालों का अर्थ सेवायोजकों सरकार और जनता का ध्यान उन बातों की ओर खींचना है, जिन्हें श्रमिक अन्याय या दबाव समझते हैं। इसलिए जब तक विधायिका और श्रमिकों के विचारों में असंगति रहेगी कि क्या न्याय है और क्या अन्याय अवैधानिक हड़तालें होती ही रहेंगी। इसी कारण से उनसे इस प्रकार निपटारा करना चाहिए कि उन्हें दबाया न जाये बल्कि अधिक मूलभूत प्रतिसमायोजनों, अन्याय और आर्थिक उथल-पुथल पर प्रकाश डाला जाय जो उनकी जड़ में स्थित हैं और जहाँ भी आवश्यक हो उन्हें सुधा-रात्मक कार्य या शिक्षा या दोनों के द्वारा दूर करने का मार्ग निकाला जाय। हड़ताल का व्यक्त कारण शायद ही कभी उसका वास्तविक कारण होता है, अधिक से अधिक वह सीमान्तक-घटना हो सकती है। किसी व्यक्ति ने जिसने एक हड़ताल के लिये विभिन्न प्रकार की अपीलें की हैं या देखी हैं वह जानता है कि किस प्रकार संचित शिकायतों या अनेक असंबन्धित घटनाओं

को कैसे उठाया जाता है, जिससे हड़ताल का वातावरण किसी भी संस्थान या संयंत्र में बनाया जा सके। एकबार जब यह वातावरण बन जाता है तो वास्तविक हड़ताल किसी भी छोटे से बहाने पर शुरू हो सकती है। तदुपरान्त जब हड़ताल किसी तात्कालिक या घोषित कारण के दूर होने पर या संघर्ष में हड़ताल की शक्ति समाप्त होने पर वापस ले ली जाती है तो उसकी पुनरावृत्ति तभी संभव होती है जब कि मूलभूत कारणों को जिनकी वजह से हड़ताल शुरू हुई थी ध्यान नहीं दिया जाता है। जब ऐसी हड़तालें एक या दो वर्षों के आवधिक अन्तरों पर हों तो उन्हें भाफ निकालने वाले सेफ्टीवाल्व समझना चाहिए जिनके अभाव में अधिक भयंकर स्वरूप उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसी फैक्टरियों में जहां श्रमिक पूरे दिन का कठिन श्रम करते हैं ऐसी हड़तालें प्रायः एक बलकारक प्रभाव रखती हैं क्योंकि उनके द्वारा अवधि के संचित तनावों को दूर किया जा सकता है या फैक्ट्री की कार्य व्यवस्था में कठिन परिवर्तन करने या भुगतान योजना के पुनर्आकलन का मौका लिया जा सकता है। अक्सर ऐसी हड़तालें फैक्टरी के स्तर पर आकस्मिक प्रकार से उत्पन्न हो जाती हैं। साधारणतया नेता को पता रहता है कि परिस्थिति विस्फोटक है परन्तु हड़ताल का वास्तविक प्रभाव या घटना बिना उसकी स्पष्ट इजाजत के हो सकते हैं। दूसरी ओर ऐसे भी उदाहरण मौजूद हैं जहाँ हड़ताल की योजना के नियंत्रक अनेक तत्वों में से एक में भी परिवर्तन होने पर हड़ताल के शुरू होने के कुछ ही समय पहिले ऐन मौके पर अपने पूर्व फैसलों को बदल दिया। अनेक प्रकार के कारण होते हैं जो वास्तविक हड़ताल को प्रेरित करते हैं। भारतीय संदर्भ में इनमें से औद्योगिक कार्य में खराब सामाजिक स्थिति, थकान, और भग्नाशा और श्रमिकों को दी गई निम्न श्रेणी ही स्थायी मूलभूत कारण हैं। मजदूरी महंगाई भत्ता, बोनस, या अन्य वित्तीय माँगों की माँग पर हड़तालों को एक भिन्न वर्ग माना जा सकता है। सक्रिय ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ता का शिकार होना या अन्तर यूनियन शत्रुता तथा विकसित होने वाली परिस्थितियों के कारण भारत में अनेक हड़तालें हुई हैं। इस देश में अनेक सेवायोजक ऐसे हैं, जिन्होंने स्वयं को श्रम आन्दोलन से अभी तक समायोजित नहीं कर पाया है और ऐसे मामलों में यूनियन हड़ताल से ही प्रारम्भ करती है। दूषित या असंतुलित मजदूरी की सौदेबाजी जिसने कुछ श्रेणियों या क्षेत्रों के प्रति तुलनात्मक अन्याय किया है धीरे धीरे हड़ताल का कारण बनती जा रही हैं। ऐसे विरोध बहुत ही

प्राकृतिक हैं और टूटने वाले यूनियनों के निर्णय के कारण बने रहेंगे ऐसी सम्भावना है। किसी संस्थान में एवार्ड के पालन न करने या किसी समझौते के गलत निर्वचन इत्यादि भी सामान्य हड़ताल के अवसर प्रदान करते रहे हैं। एक विशिष्ट पदवृद्धि या पदवृद्धि नीति का विरोध भी हड़ताल का एक नया कारण बन रहा है। विशेष तौर पर उन सफेद कालर श्रमिकों के बीच जिनमें इस मामले में भावनाशीलता अधिक प्रचन्ड है।

हड़ताल के कारण और कार्य पद्धति का विश्लेषण हमें हड़ताल की परिस्थिति के परिचालन के मार्ग सुझाता है। इस संदर्भ में हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि वैधानिक और अवैधानिक हड़तालों का वर्तमान भेद एक नये भेद द्वारा बदल देना चाहिये— वैधानिक, विधान–विरत और अवैधानिक। अपने विवेक से विधायिका व्यवस्थायें कर सकती हैं जिसके अनुसार एक हड़ताल वैधानिक मानी जा सकती है. जिसमें श्रमिक को हड़ताल की अवधि का वेतन या मजदूरी मिलने का हक हो। इसी प्रकार वह कुछ अन्य हड़तालों को अवैधानिक भी करार दे सकती है जिनमें तोड़ फोड़, धौंस, आधार या हिंसा का सहारा लिया जाता है। जनोपयोगी संस्थानों में केवल ये दोनों ही अन्तर चलने चाहिये और इसी प्रकार तालाबन्दी भी कानून के द्वारा वैधानिक और अवैधानिक रूप से परिमाणित होनी चाहिये। बाकी सभी मामलों में एक तीसरे प्रकार की हड़ताल की श्रेणी होनी चाहिये जो न तो वैधानिक हो और न स्पष्टतया अवैधानिक। इसे विधान–विरत हड़ताल कहा जाना चहिये, जिसमें वे सजायें न दी जायं, जो एक अवैधानिक हड़ताल में दी जाती हैं। यह विधायिकाओं के लिये यह संभव करेगा कि वह वैधानिक एवं अवैधानिक हड़तालों के लिये हड़ताल घोषणा की न्यूनतम परिस्थितियां निर्धारित कर दे और बाकी जब हडतालों को विधान–विरत घोषित करने की सुविधा दे। यह सेवायोजक अथवा उस ट्रेड यूनियन के लिये खुला छोड़ना चाहिये, जो संस्थान की हड़ताली यूनियन के अलावा हो, कि वह औद्योगिक अभिनिर्णय को आवेदन करें कि वह प्रतेक हड़ताल की परिस्थितियों के अनुसार विधान–विरत हड़ताल के लिये भी अवैधानिक हड़ताल की सजा की धाराओं को आकर्षित कर सके इन मामलों का निर्णय करते समय अभिनिर्णय यंत्र कुछ विशाल वैचारिक आधारों द्वारा उस समय निर्देशित हों जब कि उसे एक विधान–विरत हड़ताल को अवैधानिक करार नहीं देना हो। ये वैचारिक आधार निम्नलिखित हो सकते हैं—

(१) हड़ताल की घोषणा से पहिले सेवायोजक को बहुत पहले सूचना दी गई थी।

(२) कार्य न करने का काम शान्तिपूर्ण हो।

(३) हड़ताल का प्रमुख उद्देश्य सेवायोजक को वार्तालाप की मेज पर लाना हो।

(४) हड़ताल शुद्ध टोकेन प्रकृति की हो।

(५) वह सन्नियम या एवार्ड की व्यवस्थाओं का पालन करवाने के निमित्त की गई हो।

(६) घोर असंतोष उत्पन्न करने के लिये काफी उत्तेजना मौजूद हो।

(७) कोई अन्य कारण, जोकि अपमानजनक या निम्नश्रेणी का घुटनाटेक सामान्य कार्य करने के बराबर हो।

उपरोक्त वैचारिक आधारों की उपस्थिति या अनुपस्थिति का सामान्यतः प्रभाव औद्योगिक टिब्यूनल को यह तय करने में पड़ना चाहिए कि किसी विशिष्ट मामले में अवैधानिक हड़ताल के लिए निर्धारित सजा की धाराओं को आकर्षित किया जाये या नहीं, जिसके लिए किसी योग्य पक्ष ने, जो शामिल हो या प्रभावित हो, आवेदन किया गया हो। ठीक इसी प्रकार हड़ताली यूनियन के लिये भी यह खुला होना चाहिये कि वह एक अवैधानिक को विधान-विरत या एक विधान-विरत को वैधानिक हड़ताल घोषित करवा ले और तत्संबन्धी व्यवस्थाओं का लाभ उठावे।

हमारे द्वारा सुझाया गया वर्गीकरण एक बहुत आवश्यक वर्गीकरण है और वास्तव में अनेक उदार सेवायोजक विभिन्न प्रकार की हड़ताल परिस्थितियों के निवारण के लिये किसी ऐसे ही प्रकार के वर्गीकरण स्वीकार करना पसंद करते हैं। उन्होंने किसी हड़ताल के उपरान्त हड़ताली परिस्थितियों को स्थिर करने में इससे काफी सफलता प्राप्त की है। ऐसे सेवायोजकों की संख्या यद्यपि बहुत ही कम है और उनमें एकरूपता होने से यूनियनें अन्दाजा ही लगाती रहती है और यह औद्योगिक मनःस्थिति को प्रभावित करता है। अनेक योग्य पर्यवेक्षकों द्वारा यह अनुमान लगाया गया है कि हड़तालों के द्वारा उत्पादन की गिरावट

खराब औद्योगिक सम्बन्धों के कारण होने वाली गिरावट की अपेक्षा बहुत कम होती है। यदि हड़ताल को एक सम्मानजनक और भली-भांति समझ में आने वाला विरोध का एक स्वरूप बना दिया जाये तो औद्योगिक संघर्ष की प्रक्रिया का एक जीवन्त भाव विकसित होगा और कार्यकारी-शक्ति-मत्ता की मनःस्थिति स्थिर रखने में व्यवहारिक सहायता मिलेगी। यह निश्चित रूप से सम्मानपूर्वक और कार्य की प्रतिष्ठा को संचित रखते हुए कठिन मेहनत के लिये प्रेरक वातावरण उत्पन्न करेगा क्योंकि जब यह समझा जाने लगता है कि कार्यकारी परिस्थितियां अब सम्मानजनक नहीं रह गई हैं तभी हड़ताल और कार्य की अपेक्षा का दूसरा मार्ग अपनाया जाता है। यह एक प्रकार का अस्थायी पलायन है, जो एक योग्य हाथों से प्राप्त होने पर स्वस्थ खलबली और महत्वपूर्ण विषय पर गम्भीर विचार विमर्ष उत्पन्न करता है। ऐसी हड़तालों के पीछे का दर्शन या सामाजिक आधार पर वादविवाद की औद्योगिक अभिनिर्णय में व्यवस्था और जब आवश्यक हो तो उससे फैसला करवाना, सभी सम्बन्धित व्यक्तियों पर एक गुणकारी प्रभाव डालेगा कि वे एक तीसरे पक्ष के सम्मुख अपने कार्यों के औचित्य के सम्बन्ध में विचार करें। वास्तव में इसके द्वारा वे हड़ताल जैसी समस्या को उपभोक्ताओं या सामान्य जनहितैषी हल के करीब ले आते हैं, जो एक बहुत उपयोगी निवारण-विधि है, यद्यपि उपेक्षित है। इसके माध्यम से यूनियनों के द्वारा 'एक्शन कमेटी' के झन्डे के नीचे हड़ताल–घोषणा करने का कार्य भी अनावश्यक हो जायेगा जिसका प्रयोग मान्यता जैसे उद्देश्यों के लिये अपने यूनियन के प्रत्यक्ष रिकार्ड को साफ रखने के लक्ष्य से किया जाता है। यह उत्तम होगा कि किसी योग्य ट्रिब्यूनल के समक्ष यूनियनों में उन हड़तालों को स्वीकार करने का नैतिक साहस होना चाहिये जिन्हें वे न्यायपूर्ण समझने का विश्वास रखती हैं। हड़तालों की संस्थात्मक प्रक्रिया निर्माण और सामाजिक-भेदभाव के दर्शन का विकास और निर्देश इस सम्बन्ध में वर्तमान अवस्था को सुधारने के लिये आवश्यक योगदान होगा।

तालाबन्दी

सैद्धान्तिक रुप से तालाबन्दी की स्थिति पर भी हड़ताल के समान आधार पर ही तर्क संभव है क्योंकि हड़ताल करने का अधिकार एक जन –प्रसंविदा के दो पक्ष होने के नाते सेवायोजक और श्रमिकों के बीच

समानता के संबोध से उत्पन्न होता है। परन्तु यह कभी भी तथ्य रूप में नहीं पाया जाता है । वर्तमान परिस्थितियों में यह संबन्ध पूर्ण रूप से असमान होता है। श्रमिक बिना सेवायोजक की सहमति के सेवायोजन के नियमों को नहीं बदल सकता है। परन्तु सेवायोजक अनेक परिवर्तन करने और अनेक आदेश देने के लिये अधिक स्वतंत्र है। इस लिये उसे बिना नोटिस अपने श्रमिकों की तालाबन्दी करके प्रसंविदा को तोड़ने की कभी जरूरत नहीं है। यह सेवायोजकों के लिये आसान है कि वे प्रसंविदा की पवित्रता की बात करें परन्तु श्रमिकों को अनेक बार प्रसंविदा तोड़ने और साथिओं का विश्वास तोड़ने के बीच चुनाव करना पड़ता है कि क्या वे सेवायोजक को सेवायोजन की परिस्थतियों को बिगाड़ने की इजाजत दे सकते हैं ! हड़ताल श्रमिकों के लिये अधिक आवश्यक है न कि तालाबन्दी क्यों कि सेवायोजक द्रढ़ स्थिति मे होते हैं। और उहें तालाबन्दी करने की जरूरत नहीं पड़नी चाहिये । इस लिये हड़ताल और तालाबन्दी पर बिना भेद भाव के लगाया जाने वाला प्रतिबन्ध श्रमिकों के प्रति अन्याय होगा। इसलिये, हम सुझाव देते हैं कि किसी उद्योग में तालाबन्दी और जनोपयोगी संस्थान में हड़तालों में समानता रखी जाये और उनके संदर्भ में कोई विधान-विरत हड़ताल न हो। उनके मामले में हड़ताल और तालाबन्दी वैधानिक होने चाहिए और उस समय होनी चाहिये जबकि उन्हें रोकने के लिए सभी प्रयत्न समाप्त हो गए हों, एक कानूनी नोंटिस दिया गया हो और तृतीय पक्ष के निर्णय को भी मामला सौंपने की तैयारी रहे। हम इस सम्बन्ध में यह जोड़ना चाहते हैं कि जनोपयोगी संस्थानों की घोषणा कानून के द्वारा की जाये ओर प्रशासक की मर्जी पर न छोड़ी जाये।

घेराव

एक अन्य प्रश्न जिसने जनता का ध्यान अभी हाल में बहुत आकर्षित किया है 'घेराव' है और इस विषय पर अलग विवेचन करना आवश्यक है। औद्योगिक युद्ध संचालन के लिये श्रमिकों के हथियारो में घेराव एक वैधानिक शस्त्र नहीं है। घेराव शब्द अभी हाल में रचा गया है परन्तु घटनायें इतनी नई नहीं हैं। कानून की कमियों और विभिन्न यंत्रों की असमुचितताओं के प्रति श्रमिकों की एक प्रकृतिमूलक प्रतिक्रिया के रूप में घेराव स्वाभाविक है और उसके स्वागत या तिरस्कार का कोई प्रश्न नहीं है। केवल तिरस्कार करने

का कोई अर्थ नही जब तक कि आधारभूत कारणों को दूर करने का कठिन प्रयत्न न किया जाये। हमने इस स्मृतिपत्र में अन्य स्थान पर श्रमसन्नियमों को अधिक पूर्ण और यंत्र को अधिक कुशल बनाने के निमित्त सुझाव दिये हैं। यदि ये सुझाव माने जायें तो प्रतिक्रियात्मक घेराव बेकार हो जायेगें। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रतिक्रियात्मक घेराव पूर्ण नियोजित या संगठित नहीं होते हैं। वे शुद्ध औद्योगिक प्रकृति के होते हैं जो वैधानिक नहीं हैं। दूसरी ओर राजनीतिक घेराव पूर्ण नियोजित और सुविचारित होते हैं। वे उस उथल-पुथल को निर्माण करने के दीर्घसूत्री प्रयत्न की श्रृंखला की एक कड़ी के रूप में है, जो अन्तिम क्रान्ति की स्थिति का निर्माण करेगी। ऐसे मामलों में श्रमिकों को एक राजनीतिक खेल में केवल मोहरों के समान समझा जाता है और अगले राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उनके रोष का शोषण किया जाता है। ऐसे घेरावों का घोर तिरस्कार किया जाना चाहिये। वे न केवल अराष्ट्रीय ही परन्तु श्रमविरोधी भी होते हैं। दीर्घकाल में वे श्रमिकों की न्यायपूर्ण और ठीक मांगों के प्रति भी सारी जनता की प्रवृत्ति को आक्रमक बना देती हैं। इस राक्षस के संहार के लिये सही रास्ता को इस मेमोरेण्डम में हमारे द्वारा दिये गये सुझाओं को अपनाना है। यदि श्रमिकों को विश्वास हो जाये कि न्याय सस्ता और शीघ्र उपलब्ध होगा तो वे कभी भी बाहरी राजनीतिक स्वार्थों द्वारा अपना शोषण स्वीकार नहीं करेंगे।

त्रिदलीय संस्थायें

भारत की वर्तमान त्रिदलीय संस्थाओं ने सरकारी प्रवक्ताओं, उद्योग और श्रमिक नेताओं के विचारों को व्यक्त करने के लिये बहुत उपयोगी मंच प्रस्तुत किया है परन्तु इस कार्य के अतिरिक्त इसने श्रमिकों के जीवन पर कोई जीवन्त प्रभाव नहीं डाला है। अनेक बार १५ वें त्रिदलीय सम्मेलन को औद्योगिक संबन्ध का एक महत्वपूर्ण मार्ग सूचक माना जाता है क्यों कि इसने 'जीवनीभृत्ति' 'न्यायपूर्ण भृत्ति' और 'न्यूनतम भृत्ति' के सम्बोधों की परिभाषा की, और २० वें ने 'अनुशासन कोड' के अंतर्गत मान्यता प्राप्त यूनियन के अधिकारों को परिभाषित किया। परन्तु भारत सरकार ने द्वितीय वेतन आयोग के समक्ष एक वक्तव्य दिया कि यद्यपि राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में सरकार स्वयं भी एक पक्ष थी किन्तु यह कहना उचित नहीं होगा कि सरकार उन प्रस्ताओं को मानने के लिए वाध्य है। और यह उन सुझावों को पालन करवाने के लिये कोई

प्रशासनिक कार्य करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध नहीं है। यदि सरकार इन प्रस्तावों का पालन करने के लिये कटिबद्ध नहीं हो तो कोई कारण नहीं कि अन्य कोई भी पक्ष उनका पालन करे। वास्तव में भारतीय श्रम कान्फ्रेंस का मंच पूर्णरूपेण अप्रभावी हो गया है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, जोकि अनेक सरकारों, उद्योग और विभिन्न देशों के श्रमिक नेताओं का एक त्रिदलीय मंच है आज भी हमारे राष्ट्रीय त्रिदलीय संस्था से अधिक प्रभावी हैं। **ILO** ने कार्य-अध्ययन में अनेक विशिष्ट और योग्य सेवाओं और उत्पादकता तथा श्रमिक कल्याण की अनेक तकनीकें विकसित की हैं जो श्रमिक जीवन को काफी हद तक योग्य रूप प्रदान कर रहा है। हम पहिले कह चुके हैं कि हमारे श्रमकानून अधिकतर **ILO** द्वारा निर्धारित रेखाओं पर बने हैं। उसके प्रकाशन भी प्रामाणिक पुस्तकें समझी जाती हैं और अभिनिर्णय में आने वाले अनेक विवादों पर अपनी छाप छोड़ते हैं। परन्तु भारतीय श्रम सम्मेलन और स्थायी श्रम कमेटी से यह अपेक्षा करना अस्वाभाविक नहीं है कि वे भारतीय श्रमिक के जीवन स्तर को उठाने में अतीव योगदान दे सकते हैं, बेकारी दूर कर सकते हैं और उत्तम औद्योगिक वायुमंडल बना सकते हैं।

हमारी त्रिदलीय संस्थाओं का प्रमुख दुर्गुण यह है कि वे श्रमिक के लिये कोई स्थायी कार्य नहीं करती हैं। प्रभाव में वे केवल प्रदर्शनात्मक संस्थायें रह गईं हैं जो समय समय पर कसमें खा सकती हैं और जिन्हें कान्फ्रेंस से बाहर आते ही भूल जाया जाता है। उनके पास एक प्रभावी कार्यालय होना चाहिये जो उनके फैसलों को लागू करवावें और उनके स्तर और महत्व के अनुसार विशिष्ट कार्य करें। ऐसे तीन कार्य राष्ट्रीय त्रिदलीय संस्था के नियंत्रण में स्पष्ट रूप से रखने योग्य हैं। एक तो भारतीय श्रमिक की कार्यकारी एवं जीवन निर्वाह परिस्थितियों से सम्बन्धित संमंकों के संग्रह और प्रकाशन का कार्य है। वर्तमान स्थिति यह है कि यह कार्य विभिन्न राज्यों और केन्द्रीय सरकार के श्रम विभागों, भारतीय साँख्यकी संस्था, राष्ट्रीय न्यादर्श सर्वेक्षण, केन्द्रीय साँख्यकीय संगठन और श्रमिक-ब्यूरो शिमला द्वारा किया जाता है। परन्तु यह कार्य बहुत अल्प और असम्बद्ध है और व्यवहारिक उपयोग में नहीं लाया जा सकता है। यहां तक कि जीवन निर्वाह निर्देशाकों के निर्माण और रखरखाव का कार्य, जिसपर श्रमिकों का महंगाई भत्ता हमेशा ही निर्धारित

किया जाता है, भी अनेक दुर्गुणों से भरा है तथा राजनीतिक प्रभावों के लिए खुला हुआ है। इस महत्वपूर्ण समंक का संकलन और प्रकाशन का कार्य त्रिदलीय सम्मेलनों द्वारा किया जाना चाहिये। इससे सम्बन्धित कार्य का संकलन श्रमिक उत्थान के लिए महत्वपूर्ण एवं व्यवहारिक योजना बनाने में योग्य आधार प्रदान कर सकता है, यह क्षेत्र मौलिक और महत्वपूर्ण शोध के लिये खुला है और इस कार्य में त्रिदलीय का लगना श्रमनीति को एक निश्चित दिशा प्रदान करेगा। यह ट्रेड यूनियन आन्दोलन को राष्ट्रीय योजनाओं और नीतियों में अपना अधिकारी भाग प्राप्त कराने में भी सहायक होगा।

त्रिदलीय का दूसरा कर्तव्य श्रमिक और निरीक्षकों का प्रशिक्षण होना चाहिये, जिसमें ट्रेड यूनियन कार्यों के लिए श्रमिक शिक्षा भी सम्मिलित है। वर्तमान समय में सरकार इस सम्बन्ध में कुछ कक्षायें चला रही है और कुछ अन्य कार्यों को राष्ट्रीय उत्पादकता काउंसिल चला रही है। **ILO** ने उत्पादकता को अन्तर्राष्ट्रीय सेवा प्रस्तुत करने के लिये अपनी योजना का महत्वपूर्ण अंग माना है। उत्पादकता के लिये चेतना-निर्माण करना भी त्रिदलीय के लिये एक महत्वपूर्ण कार्य है और समय के साथ उसके कार्यों का एक अंग बन जायेगा। ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ताओं के व्यवहारिक प्रशिक्षण की एक तात्कालिक योजना जो श्रमिकों को सुरक्षा, अनुशासन, पद-अवसरों, कल्याणकारी योजनाओं इत्यादि के संबन्ध में चेतना दे और औद्योगिक संबन्धों में निरीक्षकों का प्रशिक्षण एक त्रिदलीय संस्था द्वारा अच्छा किया जा सकता है न कि एकदलीय संस्था अर्थात सरकार द्वारा।

तीसरा कार्य समाज सुरक्षा की एक सामूहिक योजना है। वर्तमान समय में कुछ योजनायें जैसे कर्मचारी प्रावीडेन्ट फन्ड, कर्मचारीबीमा इत्यादि विभिन्न त्रिदलीय सस्थाओं द्वारा चलाई जा रही हैं। वेकारी के वीच के संबन्ध में भी एक योजना है। समाज सुरक्षा का विवेचन करते समय हम अनेक समन्वय की बात करेंगे। इस समय यह कहना काफी है कि सारी योजना का समन्वय होना चाहिए और उसे राष्ट्रीय त्रिदलीय के सामान्य निरीक्षण में चलाया जाना चाहिये।

उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये त्रिदलीय की एक स्थायी समिति केन्द्रीय श्रम-मंत्री की अध्यक्षता में बनाई जानी चाहिए। सरकार की सहमति से

संस्थान के मुख्य प्रशासकीय अधिकारी की नियुक्ति त्रिदलीय बोर्ड द्वारा की जानी चाहिये।

सामान्य

विशाल दृष्टिकोण से यही वह मार्ग है, जिसपर उद्योग में मानवीय संबन्धों को प्रभावीरूप से चलाना चाहिए जिससे रुक रुक कर चलने वाली लम्बी दौड़ में गति फलदायक हो। निश्चित और स्पष्ट विचारों के आधार पर उसका अभिनवीकरण करने में बार बार असफलताओं और विशालस्तर पर दुर्घटना का मुंह देखना पड़ेगा। सभी बातों की योजना में वैधानिक सन्नियमों का न्यूनतम स्थान ही होना चाहिये। दोनों पक्षों पर कुशल वार्ताकारों का एक स्थायी कार्यकारी यंत्र जो दृढ़ परम्पराओं और व्यवहार के मानदण्ड स्थापित कर सकें—और एक उत्साही स्वीकृति के साथ ही संस्थाकृत हो—एक नवीन औद्योगिक समाज का निर्माता होगा। ट्रेड यूनियनों पर सामान्य जनता अथवा अखवारो द्वारा कितना भी प्रदर्शनकारी होने का आरोप लगाया जाये वास्तव में आजकल वह एक गम्भीर दैनिक कार्य हो गया है। यह आवश्यक है कि उद्योग उनके कार्य को आफिस या फैक्टरी परिसर के अन्दर ठीक सुविधायें देकर और उन्हें उद्योग का एक भाग मानते हुये न कि आफिस के बाहर का कार्य समझकर सम्मान देकर उनके कार्य को आसान बनादे। सेवायोजक और कर्मचारी के बीच स्थायी सद्भावना के निर्माण के लिये एक स्थिर और स्वस्थ संम्प्रेषण एक पूर्व आवश्यकता है और इस सम्प्रेषण के लिए मान्यता प्राप्त यूनियन एकाकी नहीं तो एक महत्वपूर्ण साधन तो अवश्य ही हैं। निर्वाचन के द्वारा श्रमिकों की वर्क्स कमेटी बनाकर जो संयुक्त व्यवस्था कौंसिल में परिवर्तित हो और औद्योगिक सम्बन्ध में काफी शक्ति रखे विशेषरूप से अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाही उत्पादकता, कल्याण इत्यादि के विषय में, यह इस सम्प्रेषण की अन्य मुख्य प्रवाहिका है। इसे चाहिये कि वह द्विमार्गी सूचना वहन को उत्साह से कायम रखे। इसके आधार पर प्रतिनिधि यूनियन या यूनियनों से एक सामूहिक विनिमय का शीर्ष बन सकता है। इस सामूहिक विनिमय से उत्तम कुछ नही है उस समय तक जब तक कि ऐसी स्थिति न उत्पन्न हो जाये जहाँ न कोई सेवायोजक और न कोई कर्मचारी क्योंकि सभी एक औद्योगिक परिवार के सदस्य के रूप में प्रत्येक मामले को मिलकर तय करेगें। परन्तु हमारे द्वारा पहिले वर्णित कारणों से

सामूहिक विनिमय हमेंशा संभव नहीं होता है। ऐसी अवस्था में ऐच्छिक पंच-निर्णय दूसरा उत्तम मार्ग है। ऐच्छिक पंचनिर्णय की स्वतंत्र प्रकृति ही उसका सर्वोत्तम धन है और योग्य पंचनिर्णायकों के बोलते हुए फैसले, जो समय समय पर, तकनीनी सलाह पर आधारित हों स्वस्थ सम्बन्धों को विकसित करने के लिये निर्देशक तत्व बन सकते हैं। ऐच्छिक पंचनिर्णायकों के एक पेशे का विकास श्रम समस्याओं पर शोध कार्यकर्त्ताओं को भी प्रेरणा प्रदान कर सकता है। ऐसी स्थिति में सभी आवश्यक संमको को एकत्रित करने, शोध के समन्वय करने और श्रमिकों तथा निरीक्षक शिक्षा की योजनायें चलाने की जिम्मेदारी उठाने वाली त्रिदलीय संस्थायें अनेक प्रयोग की दिशाओं को प्रोत्साहित कर सकती हैं। प्रत्येक परिस्थिति में प्रभाव डालने वाली विद्युत शक्ति के वजन के लिये न्यूनतम वैधानिक सन्नियम और अधिकतम स्वतन्त्रता देश के उत्साह को अनेक सबल और मौलिक दिशाओं में सक्रिय करेंगी। विधानविरत हड़ताल के लिए क्षेत्र और अभिनिर्णय न्यायालयों में वाद-विवाद, सामाजिक अन्याय और विधान एवं मनुष्य कीं अपूर्णताओं के नए क्षेत्रों पर प्रकाश डालेंगे। संयुक्त व्यवस्था काउंसिलों का विकासमान स्वरूप हमें निर्माणात्मक कार्य का एक भिन्न संवल प्रदान कर सकता है। लाभ में हिस्सेदारी की योजना की ओर प्रगतिवादी प्रचलन और श्रमिकों के प्रतिनिधियों का संचालक मंडल में प्रवेश देश के श्रमिकों के लिए राष्ट्र निर्माणकारी कार्यो में भाग लेने का अवसर प्रदान करेंगे। इस प्रकार कार्य परिषदों के अधिकारों की वृद्धि द्वारा शिकार होने से रक्षित श्रमिक तथा विश्वासयोग्य निर्णयों और समझौते, जिसे शुभायुक्ततन्त्र उसके लिए लागू कर सकेगा, उसके हड़ताली कार्यवाही की औचित्यता व जनसाधारण और उपभोक्ता को समझाना, जिसके लिये वह उत्तरदायी है—जिनका कि वह अंग व प्रत्यंग है और जिसे नीति निर्धारण की सत्ता में हिस्सा लेने के लिए विवाद खड़ा करने का अधिकार है, जनता का एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करेगा जो, कि आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर है। यदि तब भी ऐसा आमंत्रण जनता को प्रेरणा न दे सका तो औषधि की खोज औद्योगिक सम्बन्ध मे दूसरे क्षेत्र में करनी पड़ेगी। परन्तु किसी अन्य बात के प्रति दोषारोपण करने से पहिले हमें अपने औद्योगिक सम्बन्धों के गृह को सुव्यवस्थित कर लेना चाहिये क्योंकि कौन जानता है कि हम लोग इसी क्षेत्र में अपनी सारी

समस्याओं का समाधान करलें । औद्योगिक परिवार एक बड़ा संयुक्त परिवार होना चाहिये और तब उसे एक सुदृढ़ मूल वाली छबि और रंग की प्राप्ति होगी । तभी उसका विकास भी सजीवी नियम के आधार पर होगा ।

प्रकाशक–
महामंत्री
भारतीय मजदूर संघ, उत्तर प्रदेश
२, नवीन मार्केट
कानपुर

मूल्य १ रुपया

मुद्रक–
टिप-टाप प्रिन्टर्स
२४/९१, बिरहाना रोड,
कानपुर–१
फोन : ६९११९